कमल कलिका—१

भगवान महावीर के पच्चीसवें निर्वाण-शताब्दी समारोह के उपलक्ष में प्रकाशित

मोक्षमार्ग-दर्शक

भाष्य कहानियाँ

लेखक :
मुनिश्री कन्हैयालाल 'कमल'

आगम अनुयोग प्रकाशन
सांडेराव (राजस्थान)

प्रकाशक □ आगम अनुयोग प्रकाशन परिषद्
बांकलीवास, सांडेराव
(फालना-राजस्थान)
प्रेरक □ श्री विनय मुनि
प्रथमसंस्करण □ वीर संवत् २४९८ : फरवरी १९७२
प्रतियां □ पांच हजार
मूल्य □ पांच रुपये मात्र
सम्पादक □ श्रीचन्द सुराना 'सरस'

मुखपृष्ठ परिचय :
महाराज श्रेणिक (बिंबिसार) मातंग से विद्याग्रहण कर रहे हैं।
देखिये कहानी ३७ ।

मुद्रणव्यवस्था :
संजय साहित्य संगम
दासबिल्डिग नं. ५, आगरा-२
मुद्रक
रामजीकुमार शिवहरे,
मोहन मुद्रणालय
१३/३०९, नाई की मंडी, आगरा-२

आचार, तत्वज्ञान एवं साहित्य-संस्कृति के
अक्षय कोषरूप भाष्यों के रचयिता
मनीषी आचार्यों को,
जिनकी वाणी ने
मोक्षमार्ग के पथिकों को
सदा मार्ग दर्शन दिया है।

—मुनि 'कमल'

पीठिका

□

वीतराग भगवान के श्रीमुख से प्रकाशित प्रवचन गंगा की चतुर्पथगा पावन धारायें चार अनुयोगों के रूप में आज भी प्रवाहित हैं। अनेकानेक आत्मायें इस पावन प्रवाह में कर्म मल से मुक्त होकर अतिमुक्त हुई हैं।

भगवान महावीर ने विश्व की लोककथाओं को कुछ ऐसा मोड़ दिया कि सारी कथायें मुमुक्षु मानवों के लिये सर्वथा उपादेय वन गई और उनके संकलन से कथानुयोग"का एक महा प्रवाह प्रवाहित हुआ। यह अनुयोग अन्य अनुयोगों की अपेक्षा अधिक सरस, सरल और सुवोध है।

शिशु सम सरल हृदय साधक द्रव्यानुयोग और गणितानुयोंग के गहन तत्त्वों को सहसा हृदयङ्गम नहीं कर पाते। वे इन धर्म कथाओं से हेय-ज्ञेय और उपादेय का स्वरूप सरलतापूर्वक समझ लेते हैं।

स्थानाङ्ग सूत्र में हेय, ज्ञेय और उपादेय कथाओं का वर्णन

करते हुए हेय कथाओं को विकथा की संज्ञा दी गई है। स्त्रीकथा, भात कथा, देश कथा, राज कथा, अर्थ कथा और काम कथा आदि सभी विकथायें हेय हैं। केवल धर्म कथायें ही ज्ञेय और उपादेय हैं।

कुछ धर्मकथायें विशिष्ट साधकों के संस्मरण हैं और कुछ धर्मकथायें रूपकों के रूप में सुसज्जित हैं। साधकों की जीवन कथाओं में युगानुसारी परिवर्तन निर्विवाद है, किन्तु रूपक कथाओं में कथ्य तथ्य शुद्ध स्वर्ण के समान आज भी उतना ही सुरक्षित है जितना प्रादुर्भाव काल में था।

आगमों के व्याख्याग्रन्थों में आज जितनी जीवन कथायें और रूपक कथायें उपलब्ध हैं उनका उद्गम अतीत में किसी दिन वीतराग की वाणी द्वारा ही हुआ था, किन्तु वही कथायें आचार्यों के मुंह से प्रसारित हुईं तो उनमें कुछ ऐसे अंश भी प्रविष्ट हो गये जिन्हें आज हम किसी अपेक्षा से आलोच्य या हेय कह सकते हैं। फिर भी उन कथाओं में अनालोच्य या उपादेय भाग अधिक है अतः मैंने प्रस्तुत पुस्तिका में कुछ भाष्य कथायें सरल भाषा में संकलित की हैं। आशा है पाठक "यत्सारभूतं तदुपासनीयम्" की नीति अपनाकर इन कहानियों से मार्गदर्शन प्राप्त कर मेरे श्रम को सफल बनायेंगे।

—मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

प्रकाशकीय

जैन आगमों के गहन-गम्भीर आचार एवं तत्त्वज्ञान को अधुनातन शैली में संपादित कर प्रकाशित करने के लिए 'आगम अनुयोग प्रकाशन परिषद्' की स्थापना की गई है। इसके मूल प्रेरक हैं, शास्त्र विशारद मुनिश्री कन्हैयालाल जी 'कमल'

इस संस्थान की ओर से अब तक तीन ग्रन्थ—

१. गणितानुयोग, २. जैनागमनिर्देशिका और ३, समवायाङ्ग (सपरिशिष्ट) प्रकाशित हो चुके हैं।

चरणानुयोग और स्थानाङ्ग—इन दों ग्रन्थों का मुद्रण आधे से अधिक हो चुका है आगे चल रहा है।

द्रव्यानुयोग और कथानुयोग का सम्पादन कार्य भी चल रहा है। आशा है निकट भविष्य में ही दोनों ग्रन्थों का मुद्रण प्रारम्भ हो जायगा।

स्वाध्यायशील विद्वानों ने गणितानुयोग ग्रन्थ का इतना अधिक आदर किया है कि केवल एक वर्ष की अल्पावधि में ही प्रथम संस्करण समाप्त प्रायः है। थोड़ी सी प्रतियां शेप हैं।

जैनागम निर्देशिका और समवायाङ्ग का भी भारत एवं विदेशों के शोध संस्थानों में अच्छा स्वागत हुआ है। शोध प्रेमियों के लिये ये ग्रन्थ इतने अधिक उपादेय हैं कि प्रतिवर्ष इनकी पर्याप्त मांग रहती हैं।

स्वाध्यायशील आगम प्रेमियों की कई दिनों से यह प्रेरणा थी कि सामान्य साक्षरों के लिए भाष्य कहानियों का एक संकलन सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशित हो, जिससे जन साधारण में आगम स्वाध्याय की रुचि जागृत हो और ज्ञान, दर्शन व चारित्र की साधना में संलग्न साधकों को मार्गदर्शन मिले। वे भाष्य-कहानियों के माध्यम से कदम-कदम पर आनेवाली साधक-जीवन की कठिनाईयों को समझें और उपदिष्ट उपादेय मार्ग का अवलम्बन लें।

आगम अनुयोग प्रकाशन से प्रकाशित साहित्य का स्वाध्याय करनेवालों की भावनाओं का समादर करके आगम रहस्यवेत्ता पण्डित रत्न मुनिश्री कन्हैयालाल जी महाराज 'कमल' ने लोकोपयोगी भाष्य कहानियों का यह संकलन प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन दानवीर सज्जनों ने उदार

हृदय से अर्थ सहयोग दिया है उन सबके हम हृदय से आभारी हैं। पुस्तक विक्रय से प्राप्त अर्थराशि का उपयोग आगामी प्रकाशनों के लिए किया जायगा।

आगमों के व्याख्या ग्रन्थों में—टीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और वृत्ति आदि में जितनी कहानियाँ हैं, उन सबका पाकेट बुक साइज में एकसौ आठ पुस्तकों की एक माला प्रकाशित करने का आयोजन किया जा चुका है। आशा है—पाठक शीघ्र ही द्वितीय पाकेट बुक अपने हाथों में पाकर अवश्य प्रसन्न होंगे।

एक मास की अल्पावधि में प्रस्तुत पुस्तक का कलापूर्ण मुद्रण और श्रेष्ठतम साज-सज्जा से सुशोभित करने का श्रेय श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' को है; अतः हम सब सुराना जी का श्रमपूर्ण सहयोग पाकर कृतार्थ हैं और भविष्य में भी ऐसे ही सहयोग की शुभाकाङ्क्षा रखते है।

मंत्री :

आगम अनुयोग प्रकाशन परिषद्

प्राक्कथन

*

भारतीय संस्कृति में धर्म की तेजास्विता ज्ञान से नहीं, आचार से आँकी जाती है। नैतिकता, चरित्र एवं सदाचार ही ज्ञान का सार, चिंतन का नवनीत एवं अध्ययन का निष्कर्ष माना गया है। आचार्यों का यह स्वर—"सारो परूवणाए चरणं प्ररूपणा, प्रवचन एवं तत्त्वज्ञान का सार आचार है।" भारतीय जन जीवन को सदा-सदा से प्रकाश एवं प्रेरणा देता रहा है।

नैतिकता एवं सदाचार के विषय में जैन मनीषी बहुत ही जागरूक एवं सूक्ष्मदृष्टि वाले रहे हैं। जीवन की छोटी-छोटी प्रतीत होने वाली धाराओं एवं सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों पर उनका चिंतन एक सजग एवं सतर्क प्रहरी की तरह सतत जागृत रहा है। आचार के सम्बन्ध में विधि-निषेध की बहुत-सी मर्यादायें एवं आचारसंहितायें बनाकर ही उन्होंने छुट्टी नहीं लेली।

किन्तु साधक जीवन की वक्र-वीथियों में उसकी सम्यक् परिपालना कैसे कर सके, इस विषय में भी वे सदा चिंतनशील रहे हैं। साधक जीवन में कहाँ, किस प्रकार की समस्यायें, कठिनाइयाँ आती है और साधक किस प्रकार उनका यथोचित प्रतिरोध एवं समाधान करें—आचारशास्त्र का यह बहुत ही जटिल विषय है, किंतु मैं गौरव के साथ कह सकता हूँ जैन आचार्यों ने इन विषयों पर देश, काल, व्यक्ति की बदलती हुई परिस्थितियों के प्रकाश में जितनी गहराई, जितनी उदारता एवं तुलनात्मक दृष्टि के साथ चिंतन किया है, वह जैन आचारशास्त्र की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन है। जीवन की समस्याओ के साथ वे एकांतवादी या हठवादी होकर एक तरफा 'हाँ' या 'ना' के रूप में किनारा काटने वाले नहीं थे, और न मौनावलम्बन कर मूक बन जाने वाले थे, किंतु उत्सर्ग-अपवाद, स्थविरकल्प, जिनकल्प आदि के विकल्पों द्वारा सच्चे अनेकांतवादी, समन्वयवादी एवं जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोण के प्रतीक थे।

जैन आचार शास्त्र के उक्त यथार्थवादी दृष्टिकोण को समझना हो तो भाष्य साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। भगवान महावीर के उत्तरकाल (वि. छठी-सातवीं शताब्दी) में आगमों एवं निर्युक्तियों पर लिखे गये भाष्यग्रन्थों में न केवल जैन श्रमण के जीवन का सच्चा चित्रण मिलता है, किंतु उस दो हजार वर्ष

पुरानी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति एवं लोकजीवन की यथार्थ झाँकी भी उन ग्रन्थों में सुरक्षित है।

लगभग बीस वर्ष पूर्व मैंने और मेरे सहयोगी मुनि 'कमल' जी ने जब 'निशीथ भाष्य' का सम्पादन किया था तब कई बार इस प्रकार की अनुभूतियाँ हुईं कि भाष्यसाहित्य के अध्ययन के विना भारतीय संस्कृति का और कम से कम श्रमणसंस्कृति का अध्ययन-अनुशीलन तो अधूरा ही माना जायेगा।

भाष्य साहित्य की विविध सामग्रियों में उसका 'कथा भाग' एक वहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग है। इन कथाओं के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन आचार्य केवल विधिशास्त्री, या तर्कशास्त्री ही नहीं थे, किन्तु वे बहुत बड़े मानसशास्त्री एवं जन-जीवन के गहरे अनुभवी समीक्षक भी थे। वे आचार के विधि-निषेधों की नीरस बातों को भी कितनी सरलता एवं सुरुचिपूर्ण शैली में प्रस्तुत कर सकते थे यह भाष्यों में आई कथा-कहानियों से स्पष्ट होता है। इन कथाओं में तत्कालीन लोक जीवन की घटनाओं का भी चित्रण है। अतीत इतिहास की श्रुतियाँ भी संकलित हैं और साथ ही मनोवैज्ञानिक छोटी-छोटी लोककथायें भी। इन कथाओं को लिखने का ध्येय सिर्फ लोकरंजन नहीं, किन्तु सरल एवं सुगम भावधारा से पाठक के मन-मस्तिष्क में सहज रूप से प्रवेश कर सके, इस प्रकार मनो-

रंजनपूर्वक साधक का मार्गदर्शन करना था और इस ध्येय में लेखक आचार्य शतप्रतिशत सफल रहे हैं ऐसा मेरा विश्वास है।

कथाओं के माध्यम से नीति, सदाचार एवं अध्यात्म की प्रेरणायें प्रदान करना—साहित्य का एक मुख्य उद्देश्य रहा है। न केवल भारतीयसाहित्य में ही, किन्तु विश्व की विभिन्न भाषाओं के साहित्य में इस प्रकार के प्रयत्न होते रहे हैं और वे भाव-भाषा एवं कथानकों की दृष्टि से एक दूसरे के बहुत निकट रहे हैं। कथाओं की यात्रा विभिन्न भाषाओं के क्षेत्रों में मुक्त रूप से होती रही है। भारत के प्राचीन साहित्य में यह शैली परिलक्षित होती है। उपनिषदों में भी इस प्रकार की शैली चलती रही है, जहाँ विचित्र रूपकों एवं कथानकों के द्वारा तत्त्व को सरलतापूर्वक हृदयंगम कराने का प्रयत्न हुआ है। हां, उपनिषदों की कथाएँ ज्ञान प्रधान हैं, वहाँ भाष्यसाहित्य की कथाएँ आचारप्रधान हैं।

मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' ने भाष्यसाहित्य की इन आचार एवं नीतिप्रधान कथाओं को बड़ी सरल तथा सहज शैली में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इन कहानियों के अध्ययन से आचारशास्त्र की विभिन्न विधि मर्यादाओं का भी ज्ञान होगा, साथ ही प्राक्तन भारतीय लोक जीवन का भी! मुनि श्री जी प्राचीन जैन आगम एवं भाष्यसाहित्य के अच्छे

अध्येता एवं अनुसंधित्सु हैं। आगम अनुशीलन की दिशा में वे तत्पर हैं। आपने आगम साहित्य का आधुनिक रूप में विभिन्न अनुयोगों में सम्पादन करने का संकल्प किया है और इस क्षेत्र में गतिशील हैं। 'गणितानुयोग' का सम्पादन आप कर चुके हैं। विद्वद्जगत में उसे अच्छा सन्मान प्राप्त हुआ है। कथा साहित्य में सम्भवतः आपकी यह पहली पुस्तक है। मुझे विश्वास है, पाठकों को इसमें नवीनता में प्राचीनता और प्राचीनता में नवीनता का एक मधुर संगम परिलक्षित होगा और यही संगम जीवन का यथार्थवाद है। जीवन के यथार्थवाद की सतह पर प्रस्तुत ये कहानियाँ जन-जन के लिए प्रेरणादायिनी सिद्ध होंगी, इसी विश्वास के साथ........

मकरसंक्रांति
जैनभवन
आगरा

–उपाध्याय अमर मुनि

अनुक्रमणिका

असत्य :–

ब्रह्मचर्य :–

अब्रह्मचर्य :–

क्रोध :–

मान :–

माया:—

ज्ञानार्जन :—

अनुयोग :—

आहार शुद्धि :—

प्रकीर्णक :—

—*—

मोक्षमार्ग दर्शक

१

ज्ञान से रक्षा

उज्जयिनी में 'जव' (यव) नामक राजा था। उसका पुत्र 'गर्दभ' युवराज था। 'अडोलिका' नामक उसकी पुत्री—गर्दभ की बहिन थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। 'दीर्घपृष्ठ' युवराज का अमात्य था।

युवराज अपनी बहिन अडोलिका को देखकर उस पर आसक्त हो गया और दुर्बल होने लगा। दीर्घपृष्ठ ने दुर्बलता का कारण पूछा। युवराज ने कारण बतला दिया। तब अमात्य ने कहा—अडोलिका को भूगृह में डाल दिया जाय। वहाँ तुम उसके साथ भोग भोगो। लोग समझेंगे—वह कहीं भाग गई है। गर्दभ ने यह सलाह स्वीकार कर ली।

किसी समय राजा को इस अकार्य का पता चल गया। वैराग्य होने से वह दीक्षित हो गया। गर्दभ राजा हो गया।

जव साधु को पढ़ने की इच्छा नहीं होती थी और पुत्र-स्नेह

के कारण वह बार-बार उज्जयिनी में आया करता था। एक बार उज्जयिनी से कुछ दूरी पर जव के खेत के पास वह विश्राम कर रहा था। खेत का स्वामी उस खेत की रखवाली कर रहा था। उधर एक गर्दभ (गधा) जव के खेत को चरना चाहता था। तब रखवाले ने उस गर्दभ से कहा—

आधावसि पधावसि, ममं वा वि निरिक्खसि।
लक्खिओ ते मया भावो, जव पत्थेसि गद्दभा !

— अर्थात्—अरे गर्दभ ! तू कभी आगे दौड़ता है, कभी पीछे भागता है। मेरी ओर देखता है। पर मैं तेरे अभिप्राय को ताड़ गया हूँ। तू जव को खाना चाहता है।

जव साधु ने यह श्लोक याद कर लिया।

वहाँ कुछ चेट आडोलिया (उन्दोयिका-ऊँदरी) के साथ खेल रहे थे। वह भागी और बिल में घुस गई। उन्होंने उसको बहुत खोजा, किन्तु वह दिखाई नहीं दी। तब एक चेट ने उस बिल को देख कर कहा—अडोलिका दिखाई नहीं देती, अवश्य ही इस बिल में घुस गई होगी। तब उसने यह श्लोक पढ़ा—

इओ गया इओ गया, मग्गिज्जंती न दीसइ।
अहमेयं विजाणामि, अगडे छूढा अडोलिका।

अर्थात्—इधर गई इधर गई, खोजने पर दीखती नहीं। पर मैं जानता हूँ कि अडोलिका बिल में घुसी हुई है।

तत्पश्चात् वह साधु उज्जयिनी में प्रवेश करके कुंभकार की शाला में ठहरा। जव साधु जब राजा था तव अमात्य दीर्घपृष्ठ को उसने दण्ड दिया था। इस कारण अमात्य ने उससे वैर का वदला लेना चाहा। उसने गर्दभराजा से कहा—यह 'जव' परीषहों से पराजित हो कर पुनः राज्य लेने के लिए आया है। विश्वास न हो तो वेखलो, उसके उपाश्रय में शस्त्र मौजूद हैं। गर्दभ ने शस्त्र देखे। वह शस्त्र अमात्य ने उपाश्रय में ले जाकर पहले से छिपा दिये थे। राजा को विश्वास हो गया।

उस कुंभकार शाला में एक चूहा आ-आ कर भय से भाग जाता था। यह देख कुंभकार ने कहा—

सुकुमालग ! भदद्लया ! रत्तिं हिंडनसीलया !
भयं ते नत्थि मंमूला, दीहपिट्ठाओ ते भयं !

अर्थात्—अरे सुकुमार ! भद्र आकृति वाले ! रात्रि में विचरण करने वाले। तुझे मुझसे भय नहीं है, दीर्घपृष्ठ (सर्प) से भय है।

साधु ने यह श्लोक भी याद कर लिया।

राजा साधु को मार डालने के लिए गुप्तता चाहता था। प्रकट में मारने से अपकीर्ति होती ! इस कारण वह रात्रि में कुंभकार शाला में जा छिपा था।

साधु ने जो तीन श्लोक याद कर लिये थे, उनका पाठ किया। प्रथम श्लोक सुनकर गर्दभ ने विचार किया—साधु ने मेरे अभिप्राय को जान लिया है। यह अतिशय ज्ञानी मालूम पड़ते हैं।

तब तक साधु ने दूसरा श्लोक भी पढ़ा। उसमें अडोलिका की बात आई थी। राजा समझा—साधु ने मेरे बहिन सम्बन्धी रहस्य को भी जान लिया है।

फिर साधु ने तीसरा श्लोक पढ़ा। उसमें कहा गया था कि 'तुझे मुझसे भय नहीं, दीर्घपृष्ठ से भय है।' राजा दीर्घपृष्ठ का मतलब सर्प नहीं, किंतु अपना ही अमात्य समझा। उसने सोचा—"यह अमात्य मुझे मारना चाहता है, मेरे पिता राजा होकर भी भोगों के त्यागी बने। वे फिर राज्य की इच्छा कैसे कर सकते हैं? यह अमात्य ही मुझे मारने के लिए यत्न कर रहा है।" ऐसा सोचकर राजा ने अमात्यका मस्तक काट लिया और साधु के पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। क्षमायाचना की। तब साधु ने सोचा—"मनुष्य को कुछ न कुछ अवश्य सीखना चाहिए। देखो, मुग्ध (अज्ञातार्थ) श्लोकों से भी आज मेरे जीवन की रक्षा हो गई।" साधु उसी समय से श्रुत के अध्ययन में लीन हो गए।

—बृहत्कल्पभाष्य गाथा, ११५५-६१

००

२

धर्मपरीक्षा

किसी राजा के समक्ष जैन साधु और बौद्ध साधु का वाद हुआ। जैन साधु का पक्ष था—अर्हत्प्रणीत मार्ग सुदृष्ट है। दूसरा कहता था—बुद्धप्रणीत मार्ग सुदृष्ट है। उनका वाद चलते-चलते बहुत दिन बीत गये।

एक दिन राजा ने उनके आने से पूर्व दो आसन बिछवाए। आसनों पर वस्त्र के नीचे अण्डे रखवा दिये।

बौद्ध साधु पहले आया और बिना देखे-भाले आसन पर जम गया। जैन साधु आया तो उसने वस्त्र हटा कर देखा। अण्डे दिखाई दिए। वह दूसरे आसन पर पूंज कर बैठा।

राजा को सन्तोष हो गया कि यही (अर्हत्प्रणीत) मार्ग सच्चा है। उसने बौद्ध साधु को निकाल बाहर कर दिया।

मनुष्य का धर्म और विवेक, जीवन की छोटी-छोटी बातों से परखा जाता है—राजा की उक्त परीक्षा इसी बात का संकेत देती है। —निशीथभाष्य १२. ४०२३ ००

३

प्राणरक्षा के लिए प्राणवध

एक आचार्य वृहत् शिष्य परिवार के साथ विहार करते हुए संध्या समय एक अटवी में पहुँचे। वहाँ जंगली जानवरों की वहुलता थी। उस गच्छ में एक दृढ़ संहननी कोंकण देश का साधु भी था। आचार्य ने उससे कहा—आर्य, कोई दुष्ट जानवर गच्छ का अभिभव (नाश)करे तो उसे रोकना। उपेक्षा मत करना।

कोंकणक साधु ने पूछा—कैसे रोकूं ? विराधना करके या विराधना किये विना ?

गुरु—सम्भव हो तो विराधना किये विना रोकना। नहीं तो विराधना करने में भी दोष नहीं।

तव साधु ने कहा—निश्चिन्त होकर सोओ। मैं आप सव की रक्षा करूँगा।

सव साधु सो गए। अकेले जागते उस साधु ने सिंह को आते

देखा। उसने 'हड्' (हट) कहा। सिंह नहीं हटा। तब उसने दौड़ कर धीरे से उसे लाठी मारी। सिंह परितप्त हो कर चला गया।

थोड़ी देर में पुनः सिंह आता दिखाई दिया। साधु ने सोचा यह ठीक तरह परितापित नहीं हुआ, इसी से दुबारा आया है। यह सोच कर उसने अब की बार अधिक गहरा प्रहार किया।

सिंह चला गया। तीसरी बार पुनः सिंह आया। अब की बार साधु ने पूरी ताकत लगा कर प्रहार किया।

रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातः सकुशल जाते हुए साधुओं ने देखा सिंह अनुपथ में (सन्निकट ही) मरा पड़ा है। कुछ दूरी पर दूसरा सिंह मरा पड़ा देखा। कुछ और दूर तीसरा मरा था। जिसे पहले धीमे से मारा था, वह दूर जाकर मरा था, जिस पर मध्यम प्रहार किया था वह बीच में और जिस पर पूरी शक्ति से प्रहार किया गया था वह अन्त में (पास में) मरा था।

कोंकणक साधु ने आलोचना की। आचार्य ने कहा—तुम निर्दोष हो।

आचार्य, संघ आदि की रक्षा के लिए प्राणवध करने वाले साधु का उद्देश्य भी अशुद्ध नहीं है, अतः आचार्यों का अभिमत है —उसे भी कोई दोष नहीं लगता।

—निशीथ०, पृष्ठ १०० ००

शरणागत को क्षमा

एक गांव में किसी उत्सव के अवसर पर धनवानों के घर खीर बनी। यह देख कर एक दरिद्र के लड़के ने भी अपने पिता से खीर माँगी। उसने गांव में से चावल और दूध लाकर अपनी पत्नी को दे दिये। वह सीमावर्ती गाँव था, अतः अचानक चोरों की सेना आ धमकी। गाँव को लूटना शुरू किया। चोर लूट में उस गरीब की खीर के साथ पात्र भी उठा कर ले गए।

वह गरीब उस समय खेत पर गया था। घास काट कर खेत से आया तो सोच रहा था—आज बच्चों के साथ ही जीमूंगा। मगर ज्यों ही घर के आंगन में पहुँचा, लड़कों ने खीर-हरण का समाचार सुनाया। वह घास के पूले वहीं छोड़ कर क्रोधाभिभूत होकर चल पड़ा। जाकर चोर सेनापति के सामने खीर का

पात्र रखा देखा। चोर पुनः गांव में गए थे और सेनापति अकेला ही वहाँ बैठा था।

वह गरीब आदमी तलवार से सेनापति का मस्तक काट कर भाग गया। चोर भी चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने सेनापति का मृतककृत्य करके उसके छोटे भाई को सेनापति बना दिया।

पुराने की माता भगिनी आदि नये सेनापति पर क्रोध करके बोली—तुम्हारे जीवन को धिक्कार है! जब तुम्हारे बन्धु का वधकर्त्ता जीवित है तो तुम सेनापति कैसे? क्रोधाविष्ट होकर उसने उस गरीब को पकड़ लिया और हथकड़ी-बेड़ियां डाल कर ले आया। स्वजन परिजनों के मध्य में आसन पर स्थित होकर 'वणक' हाथ में लेकर बोला—अरे भ्रातृवैरी, बोल, कहाँ प्रहार करूँ?

गीरब बोला—शरणागत पर जहाँ प्रहार किया जाता हो, वहीं प्रहार करो।

सेनापति ने विचार किया—शरणागत पर तो प्रहार किया ही नहीं जाता! आखिर सन्मानपूर्वक उसे छोड़ दिया।

भावार्थ—हे अज्ञ सेनापति भी जब शरणागत के लिए अपने क्रोध को पीकर क्षमा कर सकता है तो ज्ञानवान श्रमण आदि की तो बात ही क्या? उन्हें तो क्षमामूर्ति बनना ही चाहिए।

—निशीथ० १०,३१८६—७ ○○

शीलरक्षा के लिए संहार

उज्जयिनी नगरी में 'गर्दभिल्ल' नामक राजा था। वहीं पर ज्योतिष-निमित्त के विशेषज्ञ कालकार्य (आर्यकालक) रहते थे। उनकी रूपवती और नवतरुणी बहिन के रूप पर मुग्ध होकर गर्दभिल्ल ने उसे अपने अन्तःपुर में बन्द कर लिया। आर्यकालक ने बहुत समझाया, संघ ने भी विज्ञप्ति की, किन्तु वह आर्या को मुक्त करने को तैयार नहीं हुआ।

तब आर्य कालक को रोष आया। उन्होंने प्रतिज्ञा की—"यदि गर्दभिल्ल राजा को राज्यभ्रष्ट न कर दिया, तो मेरी वही गति हो, जो प्रवचन और संयम का उपघात करने वालों और उनकी उपेक्षा करने वालों की होती है।"

तत्पश्चात् आर्यकालक क्रोध-रोष से उन्मत्त से हो उठे और

त्रिक, चतुष्क, चत्वर तथा जहां भी कहीं बहुत लोग इकट्ठे होते इस प्रकार प्रलाप करते हुए घूमने लगे—

यदि गर्दभिल्ल राजा है, तो इससे बढ़कर क्या होगा ?
यदि अन्तःपुर रम्य है, तो इससे बढ़कर क्या होगा ?
यदि विषय रम्य है, तो इससे बढ़कर क्या होगा ?
यदि नगरी सुनिविष्टा है, तो इससे बढ़कर क्या होगा ?
यदि जन सुवेष है, तो इससे बढ़कर क्या होगा ?
यदि भिक्षा के लिए भटकता हूं, तो इससे बढ़कार क्य। होगा ?
यदि सूने देवगृह में बसता हूँ, तो इससे बढ़कर क्या होगा ?

कुछ दिन बाद आर्य कालक 'पारस कुल' (फारस देश) में गये। वहाँ एक शाह (राजा) के पास पहुँचे। निमित्तादि के ज्ञान से उसे प्रभावित किया।

एकबार वहाँ के बड़े राजा ने, किसी कारण से रुष्ट होकर सील लगाकर 'कट्टरिगा' (कटार) भेजी कि अपना मस्तक काट लो। शाह अत्यन्त चिन्तित हुआ। तब आर्य कालक ने उसे समझाया—अपने प्राणों को यों नष्ट मत करो।

शाह बोला—जब मेरे परम स्वामी रुष्ट होगए हैं तो यहाँ ठहरना शक्य नहीं है।

आर्य कालक ने कहा—आओ, हिन्दुक देश (हिन्दुस्तान) चलें।

शाह ने यह बात स्वीकार कर ली। उसी के समान पंचानवें

अन्य शाहों को भी मस्तक काटने के लिए आदेश दिये गये थे। पहले वाले शाह ने उनके पास दूत भेजकर कहलवाया—'आत्मघात मत करो। चलो हिन्दुस्तान चलें।'

इस प्रकार छियानवे राजाओं के साथ आर्य कालक सुराष्ट्र में आ पहुँचे। उस समय वर्षाकाल आरम्भ हो चुका था, इस कारण आगे जाना संभव नहीं था। सबने विभाजन करके मंडल बना लिए। आर्यकालक ने जिसका आश्रय लिया था, वह सबका राजा बना दिया गया। उसी समय शक वंश की उत्पत्ति हुई।

वर्षाकाल समाप्त होने पर आर्यकालक ने गर्दभिल्ल राजा पर चढ़ाई करने की सलाह दी। लाढ देश के राजाओं को, जिनका गर्दभिल्ल ने अपमान किया था और साथ ही अन्य राजाओं को भी मिलाकर उन्होंने उज्जयिनी पर चढ़ाई कर दी।

गर्दभिल्ल राजा के पास एक गर्दभी रूपधारिणी विद्या थी। उसकी मूर्ति एक अटारी पर शत्रुसेना की ओर मुख करके स्थापित की हुई थी। खास अवसर पर गर्दभिल्ल राजा तेला की तपस्या करके उसे अवतारित करता था। तब वह गर्दभी घोरशब्द करके चिल्लाती थी। शत्रुसेना का जो भी मनुष्य या पशु उसका शब्द सुनता, खून की उलटी करता हुआ, भयविह्वल एवं संज्ञाहीन होकर धरती पर गिर पड़ता था।

आर्यकालक को जब पता चला कि गर्दभिल्ल तेले की तपस्या कर रहा है तो उन्होंने एक सौ आठ दक्ष योद्धाओं को

बुलाकर कहा—यह गर्दभी मुख खोले, किन्तु शब्दोच्चार न कर पाए। इसी बीच एकदम एकसाथ बाण चलाकर इसका मुख बाणों से भर देना है।

उन योद्धाओं ने ऐसा ही किया। तब वह बाणव्यंतरी गर्दभिल्ल के ऊपर मल-मूत्र त्याग कर लातों से पीटने लगी। गर्दभिल्ल निर्बल हो गया। उज्जयिनी पर आक्रमण हुआ।

गर्दभिल्ल पराजित हो गया। आर्यकालक ने अपनी साध्वी बहन को मुक्त कर पुनः संयम में स्थिर किया।

कथ्य यह है—शील की रक्षा एवं धर्म की प्रतिष्ठा रखने के लिए कभी-कभी मनुष्य को हिंसा एवं छल का भी सहारा लेना पड़ता है, किंतु वह हर परिस्थिति में उचित नहीं होता।

—निशीथ उ० १०, २८६० ००

६

क्षमायाचना

'आर्यारिय' (आर्य) जनपद के एक ग्राम में एक कुंभार रहता था। वह गाड़ी में घड़े भरकर 'दुरुवग्ग' नामक गाँव में बेचने गया। उस गाँव के गोहों (उचक्कों) को कुंभार का बैल चुरा लेने की इच्छा हुई। तब वह आपस में कहने लगे—देखो, एक अचरज की बात देखो। गाड़ी एक बैल से चल रही है।

कुंभार भी पूरा घाघ था। वह उनकी नीयत समझकर दबी धमकी के स्वर में बोला—'अरे, देखो, इस गाँव के खलिहानों में आग लगी है।'

गाड़ी चलीगई और गांव के मध्य में ठहरी। वहाँ मौका पाकर गाँव वालों ने एक बैल चुरा लिया। कुंभार ने बैल माँगा तो उन्होंने कहा—'तुम एक ही बैल जोतकर लाये थे। कुंभार ने

पुनः बैल की याचना की मगर उन्होंने नहीं लौटाया। कुंभार अपना सा मुंह लिये चला गया।

शरद् ऋतु आई। ग्रामवासियों ने खलिहानों में धान्य इकट्ठा किया। कुंभार ने उनमें आग लगादी।

इसप्रकार लगातार सात वर्ष तक वह आग लगाता रहा। आठवें वर्ष मल्लयुद्ध के उत्सव-प्रसंग पर 'उरुवग्ग' ग्राम के निवासियों ने घोषणा करवाई—"हमने जिसका अपराध किया है, उससे क्षमायाचना करते हैं। उसका जो लिया है, वापिस लौटाने को तैयार हैं। वह हमारा धान्य न जलावे।"

घोषणाकर्त्ता ने यह घोषणा करदी। उधर कुंभार ने भी उससे घोषणा करवाई—"मेरा वह बैल मुझे लौटा दो, अन्यथा अगले सात वर्षों तक और खलिहान जलते रहेंगे।"

यह घोषणा सुनकर दुरुवग्ग ग्राम के निवासियों ने कुंभकार से क्षमायाचना की। उसका बैल वापिस लौटा दिया।

जब अज्ञान और असंयत ग्रामीणों ने भी क्षमायाचना की और कुंभार ने क्षमा प्रदान की तो संयमी साधओं का तो कहना ही क्या है? जो भी अपराध किया हो, उस सबके लिए पर्युषणा के समय खमा लेना चाहिए। इससे संयम की आराधना होती है।

—निशीथ उ० १०—३१८०–८१ ००

७

ईर्ष्या से सर्वनाश

छाणे (कंडे) बीनने वाली एक बुढ़िया ने एक वाणव्यन्तर देवता की आराधना की। देवता प्रसन्न हुआ। वह छाणे पाथ रही थी कि वह रत्न बन गये। बुढ़िया ईश्वरी (धनाढ्या) बन गई। उसने चार शालाओं वाला मकान बनवाया। मकान, धन, रत्न, शयन, आसन से भरा-पूरा हो गया।

यह सब उसकी पड़ौसिन बुढ़िया ने देखा और पूछा—"बहन! इतना धन कहाँ से आ गया?"

बुढ़िया ने ज्यों की त्यों सब बातें बतलादीं। तब उसने भी उपलेपन धूपन आदि करके वाणव्यन्तर की आराधना की। देवता ने वर माँगने को कहा। वह बोली—"जो उस बुढ़िया के पास हो, वह सब मुझे दुगुना प्राप्त हो।"

दुगुनी चीजें हो गईं। वह सन्तुष्ट हो गई। पहले वाली

बुढ़िया ने यह सब सुना। तब अमर्ष (ईर्ष्या) में पूर्ण होकर उसने चिन्तन किया—"मेरा चार शालाओंवाला घर नष्ट हो जाए! उसकी जगह घास की झौंपड़ी बन जाए।"

ऐसा चिन्तन करते ही उस बुढ़िया के दो झौंपड़ियाँ हो गईं। फिर बुढ़िया ने संकल्प किया—मेरी एक आँख में फूली पड़ जाए। तब दूसरी बुढ़िया की दोनों आँखों में फूली हो गई! इसी प्रकार पहली ने एक हाथ और एक पैर टूटने का संकल्प किया तो दूसरी के दोनों हाथ और पैर टूट गए। उसका विनाश होगया।

अर्थात्—ईर्ष्या से मन में सद्बुद्धि जगने के स्थान पर दुर्बुद्धि जगती है और दुर्बुद्धि मनुष्य का सर्वनाश कर डालती है।

—निशीथ० १२

○○

८

कर के बदले, मर !

सोपारम नगर में अनेक वणिक्जन निवास करते थे। वहाँ उनके पाँच सौ कुटुम्ब थे।

राजा को मंत्री ने वरगला दिया—"इनसे एक-एक रुपया (कर) वसूल किया जाय।"

राजा ने कर की माँग की। वणिकों ने सोचा—'अब तक नगर अकर है अर्थात् यहाँ कभी कर नहीं लगा है। एकबार कर दे दिया तो बेटों, पोतों को भी देना पड़ेगा। अतः हम हर्गिज कर नहीं देंगे।

राजा ने सेवकों से कहा—"यदि कर नही देते हैं तो इनके घरों को जलादो।"

आखिर वणिकों ने कहा—"मरना स्वीकार है परन्तु कर-प्रवृत्ति चालू नहीं करेंगे।"

सब वणिकों ने अग्निप्रवेश किया—पर, कर नहीं दिया।

—निशीथ० १६-५१५६

एकवार खंदक मुनि ने अपनी वहिन को उपदेश देने जाने की भगवान से आज्ञा माँगी। भगवान ने कहा—वह स्थान उपसर्ग वाला है।

खंदक ने प्रश्न किया—मैं आराधक हूँ या नहीं ?

भगवान—तुम्हारे सिवाय सब आराधक हैं। भगवान के मना करने पर भी भावीवश वह चले गये।

पालक को खंदक के आगमन का वृत्तान्त ज्ञात हुआ। उसने उद्यान में गुप्तरूप से पाँच सौ आयुध रखवा दिये। खंदक पुरन्दरयशा से मिले। उसने कम्बलरत्न भेंट किया। वह वहाँ ठहर गये।

उधर पालक ने राजा को बरगलाया—यह खंदक परीषहों से पराजित होकर आया है और तुम्हें मारकर राज्य पर कब्जा करना चाहता है।

राजा ने पूछा—कैसे पता चले ?

पालक ने आयुध दिखला दिये। तब राजा ने कुपित होकर पालक से कहा—इनका वध कर डालो। पालक ने कोल्हू तैयार करवाया।

खंदक मुनि ने कहा—'पहले मुझे मारो।' मगर उसे कोल्हू के समीप बाँध रक्खा और दूसरे साधुओं को पेलना शुरू किया।

क्षुल्लक साधु ने आचार्य के लिए विलाप किया, किन्तु वह भी आराधक था। देखते-देखते पाँच सौ मुनि घाणी में पील दिये

गये। अन्त में खंदक को डाला। खंदक मुनि निदान करके अग्नि-कुमार देवों में उत्पन्न हुआ।

पुरन्दरयशा को इस घटना का पता नहीं था। वह सोचने लगी—साधु आहार-पानी के निमित्त नहीं आ रहे हैं, क्या कारण है ? इसी बीच खंदकदेव ने शकुलिका (चील) का रूप धारण करके रुधिर से लिप्त रजोहरण पुरंदरयशा के सामने गिरा दिया। उसे देखते ही वह सहसा आक्रन्द करती हुई उठी और राजा से बोली—पापिष्ट ! तुमने आज विनाश बुला लिया।

खंदक, परिवार सहित पुरन्दरयशा को मुनिसुव्रत स्वामी के पास लेगया। वह दीक्षित होगई। तत्पश्चात् खंदक ने क्रोधाविष्ट होकर संवर्त्तक वायु की विकुर्वणा करके बल-वाहन सहित राजा को, नगर को और आस-पास के बारह योजन तक के क्षेत्र को भस्म कर दिया। आज भी वह क्षेत्र 'दंडगारण्य' (दण्डकारण्य) कहलाता है।

८

१०

सौतेली माँ

कौशाम्बी नगरी में आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती—दोनों पधारे। उस समय वहाँ दुर्भिक्ष था। साधुजन नगर में भ्रमण कर रहे थे। तभी एक दरिद्र ने साधुओं को देखा और उनसे भोजन की याचना की।

साधुओं ने कहा—हमारे आचार्य जानें।

तब वह दरिद्र आचार्य के पास आया। आचार्य ने उपयोग लगाया तो विदित हुआ—यह प्रवचन का उपकार करेगा। फिर उससे कहा—दीक्षा अंगीकार करो तो भोजन दें।

उसने दीक्षा लेना स्वीकार किया। आहार के लिए वह दीक्षित होगया। उसे सामायिक चारित्र दिया, मगर उसकी मृत्यु होगई। अव्यक्त सामायिक वाला वह भावपूर्वक मरकर अंधे कुणाल कुमार के पुत्र के रूप में जन्मा।

कुणाल कौन था ? कैसे अंधा हुआ ?

पाटलिपुत्र में अशोकश्री राजा था। कुणाल उसका पुत्र था। कुणाल को उज्जयिनी नगरी, जागीर में दी गई थी। जब वह आठ वर्ष का था, राजा ने लेख भेजा—'शीघ्रमधीयतां कुमारः' अर्थात्—कुमार शीघ्र अध्ययन करें। राजा इस लेख को बन्द किये बिना ही उठ गया। तब कुमार की सौतेली माता ने उसे यों बना दिया—'शीघ्रमंधीयतां कुमारः' इसका अर्थ यह होगया कि कुमार को शीघ्र अंधा कर दो।

पिता का यह आदेश देख कुमार ने स्वयं ही शलाकाएँ गर्म करके आँखों में आंज लीं।

राजा ने यह वृत्तान्त सुना तो बहुत दुःख हुआ। फिर उसे एक ग्राम दे दिया। कुमार ने संगीत कला की शिक्षा ग्रहण की। कुछ समय बाद अपने पुत्र को राज्य दिलाने की इच्छा से वह पाटलिपुत्र पहुँचा। पर्दे की आड़ में अशोकश्री को संगीत सुनाया। उसने प्रभावित होकर कहा—जो इष्ट हो सो माँगलो।

कुमार ने कहा—चन्द्रगुप्त का प्रपुत्र, बिन्दुसार का नाती और अशोकश्री का पुत्र अंधा (मैं) राज्य की याचना करता हूँ।

राजा ने उपयोग लगाया। समझ गया। फिर पूछा—तुम अंधे हो, राज्य लेकर क्या करोगे ?

उसने उत्तर दिया—मैं पुत्र के लिए राज्य की याचना कर रहा हूँ। 'सम्प्रति' मेरा पुत्र है।

राजा—उसे यहाँ लाओ। देखें!

सम्प्रति बुलाया गया। संवर्द्धन किया गया। तब अशोकश्री ने राज्य दे दिया। उसने आस-पास के राज्य जीते और पराक्रम-पूर्वक राज्य का भोग किया।

किसी समय संप्रति राजांगण के बीच खड़ा इधर-उधर के दृश्य देख रहा था कि उसकी दृष्टि बहुसंख्य शिष्यों से परिवृत आर्य सुहस्ती पर पड़ गई। उन्हें देखने से उसे जातिस्मरण होगया। तब वह गुरु के समीप पहुँचा।

धर्मश्रवण करके उसने पूछा—आपने पहले कभी मुझे देखा है? फिर पूछा—इस धर्म का फल क्या है?

गुरु ने कहा—स्वर्ग या मोक्ष।

सम्प्रति ने पुनः प्रश्न किया—इस सामायिक का क्या फल है?

गुरु—अव्यक्त सामायिक का फल राज्य है।

उसने संभ्रम के साथ सब वृत्तान्त कहा।

आर्य सुहस्ती ने उपयोगपूर्वक कहा—हाँ, तुम पहले देखे हुए हो। फिर उसको सारा पूर्ववृत्तान्त कहा। तब सम्प्रति प्रवचनभक्त परम श्रावक हो गया।

चन्द्रगुप्त से बिन्दुसार अधिक महान था, बिन्दुसार से अशोक श्री अधिक महान् था और अशोकश्री से सम्प्रति अधिक महान् था। सम्प्रति के पश्चात् इस वंश की हानि होती गई। इस प्रकार मौर्यवंश यव (जौ) के आकार का रहा और उसके मध्यभाग में सम्प्रति था।

—निशीथ १६, ५७४१-४७

११

झूठ का अन्त कहाँ ?

उज्जयिनी नगरी के उत्तर दिशि में जीर्णोद्यान नामक उद्यान था। एकवार बहुत-से धूर्त्त उसमें एकत्र हुए। उसमें शशक, एलाषाढ, मूलदेव नामक पुरुष तथा खंडपाणा नामक स्त्री थी। एक-एक के साथ पाँच-पाँच सौ धूर्त्त थे। खंडपाणा के साथ पाँच सौ धूर्त्त स्त्रियाँ थीं।

एकवार लगातार सात दिन तक वर्षा होती रही। धूर्त्त भूख से पीड़ित थे। उन्होंने परस्पर कहा—हममें से कौन सबको भोजन करावे ? मूलदेव बोला—जिसने जो अनुभव किया या सुना हो, वह सुनावे। जो उसका समर्थन न करे वही सब मित्रों को भोजन करावे। जो भारत, रामायण एवं श्रुति की कथाओं से उसका समर्थन कर देगा, उसे भोजन नहीं कराना पड़ेगा।

मूलदेव का यह प्रस्ताव सुनकर सब कहने लगे—साधु, साधु—ठीक है, ठीक है।

मूलदेव ने पूछा—पहले कौन कहेगा ?

एलाषाढ़ बोला—मैं कहता हूँ।

वह कहने लगा—"मैं गाएँ लेकर अटवी में गया। चोर आते दिखाई दिये। तब मैंने अपनी कंबली बिछाकर उसमें समस्त गाएँ रखकर और पोटली बाँधकर गाँव में आगया।

गाँव के मध्य में गोद्दह (गदहे) क्रीड़ा कर रहे थे। गायों को लेकर मैं उनकी क्रीड़ा देखने लगा। क्षण भर में कलकल नाद करते हुए वे चोर वहाँ आ धमके। उन्हें देखकर सारा ग्राम, द्विपद-चतुष्पद सहित, एक वालुंक में घुस गया। चोर लौट गये। मगर उस वालुंक को एक बकरी ने निगल लिया। चरती हुई उस बकरी को भी एक अजगर निगल गया। अजगर को एक ढंका पक्षिणी ने पकड़ लिया। उड़कर वह एक वड़ के वृक्ष पर जा बैठी। पक्षिणी का एक पैर नीचे लटक रहा था। वड़ के नीचे सेना ने पड़ाव डाल रखा था। उस ढंका के पैर में एक गजराज लटक गया। ढंका आकाश में उड़ने लगी तो हाथी भी उसके पैर में लटका उड़ने लगा। तब डोवों (सेना) ने हल्ला मचा दिया।

शब्दवेध करने वाले योद्धा धनुष-बाण लेकर आये। उन्होंने एकसाथ बाण छोड़े और पक्षिणी मर गई। राजा ने पक्षिणी का पेट चिरवाया, तो उसमें अजगर दिखाई दिया। अजगर को चिर-

वाया तो वकरी निकली । उसे भी फड़वाया, तो सुन्दर वालुंक दिखाई दिया ।

इसी वीच गोद्दहों ने क्रीड़ा वन्द करदी । जैसे पृथ्वी के विल से पतंगों की सेना निकलती है, उसी प्रकार वालुंक में से ग्राम का निकलना आरम्भ हुआ । गायों के साथ मैं भी निकल पड़ा । सव अपनी-अपनी जगह चले गये और मैं गायों को छोड़कर यहाँ आगया ।

अव वताओ ! यह वात सच्ची कैसे हो सकती है ? रामायण आदि से क्या इसका समर्थन हो सकता है ?

दूसरे धूर्त्त वोले—सत्य है, सत्य है ।

एलाषाढ—गायें कंवली में कैसे समा गईं ? सारा गाँव वालुंक में किस प्रकार समा गया ?

दूसरे वोले—'भारत-श्रुति में ऐसा सुना जाता है कि पहले यह जगत् एकार्णवभूत था । उस जल में एक अंडा था । उस अंडे में यदि शैलों, वनों और काननों सहित सम्पूर्ण जगत् समा सका, तो तुम्हारी कंवली में गायें और वालुंक में गाँव क्यों नहीं समा सकता ?

ढंका के उदर में अजगर, अजगर के उदर में वकरी और वकरी के उदर में वालुंक कैसे समाये ? इसका उत्तर यह है—सुरों, असुरों, नारकों, शैलों, वनों और काननों सहित समस्त जगत् यदि विष्णु के उदर में समा सकता है; विष्णु देवकी के उदर में

और देवकी शय्या में समा सकती है और यह वचन सत्य है तो तुम्हारा वचन असत्य कैसे हो सकता है ?

अब शशक ने कहना प्रारम्भ किया—"मैं कुटुम्बि-पुत्र हूं। शरद् ऋतु में एक बार मैं खेत में गया। खेत में तिल बोया था, वह ऐसा होगया कि केवल कुल्हाड़ों से कट सकता था। मैं उसके चौतरफ घूम रहा था कि एक जंगली हाथी दिखाई दिया। उसने मुझ पर हमला किया तो मैं भागा और विशाल तिल-वृक्ष पर चढ़ गया। अब वह मुझे पा नहीं सकता था, अतएव कुंभार के चाक की भाँति उस तिल-वृक्ष के चारों ओर भ्रमण करने लगा। तिल-वृक्ष को हिलाने लगा। वृक्ष के हिलने से इतने तिल गिरे मानो मेघ से वर्षा हुई हो। हाथी के चारों ओर घूमने से वे तिल पिल गये और उससे 'तैलोदा' नामक नदी बहने लगी। वह हाथी तिलों की खल में फँस गया और मर गया। मैंने उसकी चमड़ी लेकर उससे मशक बनवाई और उसमें तैल भर लिया। मुझे भूख लग आई थी, अतएव एक 'भार' प्रमाण खल मैं खा गया। तैल के दस घड़े पी लिए। फिर तेल से परिपूर्ण मशक लेकर मैं गाँव की ओर चला। उस मशक को गाँव के बाहर वृक्ष की शाखा पर रखकर घर पहुँचा। मशक लाने के लिए लड़के को भेजा। लड़का उस शाखा को जब न पा सका तो वृक्ष को गिराने लगा। मैं घर से उठकर घूमता-घामता यहाँ आ पहुँचा। यह मेरा अनुभूत सत्य है। जो इसका समर्थन न करे वह सबको भोजन दे।

यह सुनकर दूसरे धूर्त कहने लगे—यह भाव तो भारत और रामायण में भी है। कहा है—

तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदविन्दुभिः।
प्रावर्त्तत नदी घोरा हस्त्यश्वरथवाहिनी ॥

अर्थात्—उन हाथियों के गंडस्तल से चुए हुए मदबिन्दुओं से एक घोर नदी उत्पन्न हुई जो हाथियों, घोड़ों और रथों को बहाने वाली थी।

तिलवृक्ष इतना बड़ा कैसे हो गया ? इसका उत्तर यह है— पाटलिपुत्र में माषपादप (उड़द के पौधे) पर भेरी समा गई थी तो तिलवृक्ष इतना बड़ा क्यों नहीं हो सकता ?

अब मूलदेव ने कहना आरम्भ किया—युवावस्था में इच्छित सुख का अभिलाषी मैं धाराधरण के लिए स्वामी के घर की ओर चला। छत्र और कमण्डल मेरे हाथ में था। मैंने देखा—एक वन्य गज मेरे वध के लिए पीछे आ रहा है। मैं भयभीत, अत्राण और अशरण होगया। छिपने को कोई स्थान नजर नहीं आया। तब नली (टोंटी) में घुसकर मैं कमण्डल में छिप गया। हाथी भी इसी रास्ते से कमण्डल में आ पहुँचा। मैं छहः महीनों तक उस कमण्डल में हाथी को धोखा देकर बचता रहा। उसके बाद मैं कमण्डल की ग्रीवा से बाहर निकला तो हाथी भी बाहर निकल आया, मगर उसके वाल का अग्रभाग कमण्डल में फँस गया। मैंने देखा—सामने अपार गंगा बह रही है, परन्तु मैंने गोष्पद

(तलैया) की भाँति उसे पार किया। फिर स्वामी के घर पहुँचा। वहाँ मैंने भूख और प्यास के श्रम की परवाह न कर छह मास तक धाराधरण किया। तत्पश्चात् महसेन को प्रणाम करके वहाँ से चला और उज्जैन आया। यहाँ तुम लोगों से मिला।

यदि मेरी बात सच्ची है तो हेतुओं से इसे सिद्ध करो। अगर मिथ्या मानते हो तो सब साथियों को भोजन दो।

धूर्तों ने कहा—सच है।

मूलदेव—कैसे ?

धूर्त—सुनो ! पूर्वकाल में ब्रह्मा के मुख से विप्र निकले, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैर से शूद्र निकले थे। यदि इतना जनपद ब्रह्मा के शरीर में समाया हुआ था तो तुम और हाथी कमण्डल में क्यों नहीं समा सकते ?

हाथी का वालाग्र कैसे अटक गया ? इस प्रश्न का उत्तर सुनो। विष्णु जगत का कर्त्ता है। वह समुद्र में जलशय्या पर स्थित होकर तपस्या कर रहा था। उसकी नाभि से, पद्म-गर्भ के समान ब्रह्मा निकले, मगर कमल-नाभि में अटक गये। इसी प्रकार तुम और हाथी कमण्डल से बाहर निकल आये, मगर उसका बालाग्र अटक गया तो इसमें क्या दोष हो गया ?

अब रह गई गंगा को पार करने की बात। सो राम ने सीता का समाचार लाने के लिए सुग्रीव को आज्ञा दी। सुग्रीव ने हनुमान को आज्ञा दी। हनुमान भुजाओं से समुद्र पार करके लंकापुरी में

पहुँचे। सीता को देखकर वापिस लौटे। राम ने पूछा—सागर को कैसे पार किया? हनुमान ने कहा—आपके प्रसाद से मैंने गोष्पद की भाँति समुद्र को पार कर लिया।

इस प्रकार यदि उस तिर्यंच (वन्दर) ने भुजाओं से समुद्र पार कर लिया तो तुम गंगा को पार क्यों नहीं कर सकते?

छह मास तक कैसे धाराधरण किया, इसका भी उत्तर सुन लो। देवगणों ने लोकहित के लिए गंगा से मर्त्यलोक में अवतरित होने की प्रार्थना की। गंगा ने कहा—निपात (गिरने) के समय कौन मुझे धारण करेगा? पशुपति बोले—मैं एक जटा में ही तुम्हें धारण कर लूंगा। पशुपति ने एक हजार दिव्य वर्ष तक उसे धारण कर रखा। तो तुम छह मास तक क्यों नहीं धारण कर सकते?

तत्पश्चात् खंडपाणा कहने लगी—मैं राज-रजक की कन्या हूँ। एकबार पिता के साथ वस्त्रों की बड़ी गाड़ी भरकर, हजार आदमियों के साथ, जलपूर्ण नदी पर गई। वस्त्र धोए और धूप में सुखा दिये। जब वे सूख रहे थे तभी आँधी आ गई और वह उन्हें उड़ा ले गई। तब मैं राजा के भय से गोह का रूप धारण करके रात्रि में नगर के उद्यान में गई और वहाँ आम्रलता बन गई।

एक बार रजकों को अभयदान देने की राजा की घोषणा सुनी! सुनकर मैं नूतन शरीरा हो गई। उस गाड़ी के रस्से, जो

गीदड़ों और वकरों ने खा लिये थे, वे खोजते-खोजते मेरे पिता को भैंसे की पूँछ से प्राप्त हुए। वे वापिस मिल गये।

अन्त में वह बोली—वताओ! यह सच है?

धूर्त बोले—रामायण में सुनते हैं—हनुमान की पूँछ बहुत बड़ी थी। उस पर कई सहस्र वस्त्र लपेटे गये थे और कई हजार तेल के घड़े उड़ेले गये थे, फिर उसमें आग लगाई। उससे लंकापुरी जल गई। इसी प्रकार यदि भैंसे की पूँछ से रस्से वन गए तो इसमें क्या दोष है?

एक अन्य राजा महद्‌वल और पराक्रम से सम्पन्न था। उसने युद्ध में देवराज शक्र को जीत लिया। इन्द्र के शाप से वह अरण्य में अजगर वन गया। एक वार पाण्डव राज्यभ्रष्ट होकर उस अरण्य में ठहरे थे। भीम अकेला वाहर चला गया। अजगर ने उसे निगल लिया। धर्मपुत्र युधिष्ठिर अजगर के पास गये। अजगर ने मानवी भाषा में धर्मपुत्र से सात प्रश्न पूछे। उन्होंने उत्तर दे दिए। उसने भीम को उगल दिया। राजा के शाप का अन्त आ गया। फिर राजा वन गया।

यदि यह श्रुति सत्य है तो तुम गोह का रूप धारण करके फिर नूतन शरीरा क्यों नहीं हो सकतीं?

खंडपाणा वोली—ऐसा है तो तुम सव मुझे प्रणाम करो।

पहुँचे। सीता को देखकर वापिस लौटे। राम ने पूछा—सागर को कैसे पार किया? हनुमान ने कहा—आपके प्रसाद से मैंने गोष्पद की भाँति समुद्र को पार कर लिया।

इस प्रकार यदि उस तिर्यंच (बन्दर) ने भुजाओं से समुद्र पार कर लिया तो तुम गंगा को पार क्यों नहीं कर सकते?

छह मास तक कैसे धाराधरण किया, इसका भी उत्तर सुन लो। देवगणों ने लोकहित के लिए गंगा से मर्त्यलोक में अवतरित होने की प्रार्थना की। गंगा ने कहा—निपात (गिरने) के समय कौन मुझे धारण करेगा? पशुपति बोले—मैं एक जटा में ही तुम्हें धारण कर लूंगा। पशुपति ने एक हजार दिव्य वर्ष तक उसे धारण कर रखा। तो तुम छह मास तक क्यों नहीं धारण कर सकते?

तत्पश्चात् खंडपाणा कहने लगी—मैं राज-रजक की कन्या हूँ। एकबार पिता के साथ वस्त्रों की बड़ी गाड़ी भरकर, हजार आदमियों के साथ, जलपूर्ण नदी पर गई। वस्त्र धोए और धूप में सुखा दिये। जब वे सूख रहे थे तभी आँधी आ गई और वह उन्हें उड़ा ले गई। तब मैं राजा के भय से गोह का रूप धारण करके रात्रि में नगर के उद्यान में गई और वहाँ आम्रलता बन गई।

एक बार रजकों को अभयदान देने की राजा की घोषणा सुनी! सुनकर मैं नूतन शरीरा हो गई। उस गाड़ी के रस्से, जो

गीदड़ों और वकरों ने खा लिये थे, वे खोजते-खोजते मेरे पिता को भैंसे की पूँछ से प्राप्त हुए। वे वापिस मिल गये।

अन्त में वह वोली—वताओ ! यह सच है ?

धूर्त वोले—रामायण में सुनते हैं—हनुमान की पूँछ वहुत वड़ी थी। उस पर कई सहस्र वस्त्र लपेटे गये थे और कई हजार तेल के घड़े उड़ेले गये थे, फिर उसमें आग लगाई। उससे लंका-पुरी जल गई। इसी प्रकार यदि भैंसे की पूँछ से रस्से वन गए तो इसमें क्या दोष है ?

एक अन्य राजा महद्वल और पराक्रम से सम्पन्न था। उसने युद्ध में देवराज शक्र को जीत लिया। इन्द्र के शाप से वह अरण्य में अजगर वन गया। एक वार पाण्डव राज्यभ्रष्ट होकर उस अरण्य में ठहरे थे। भीम अकेला वाहर चला गया। अजगर ने उसे निगल लिया। धर्मपुत्र युधिष्ठिर अजगर के पास गये। अजगर ने मानवी भाषा में धर्मपुत्र से सात प्रश्न पूछे। उन्होंने उत्तर दे दिए। उसने भीम को उगल दिया। राजा के शाप का अन्त आ गया। फिर राजा वन गया।

यदि यह श्रुति सत्य है तो तुम गोह का रूप धारण करके फिर नूतन शरीरा क्यों नहीं हो सकतीं ?

खंडपाणा वोली—ऐसा है तो तुम सव मुझे प्रणाम करो।

कहीं जीत लिये जाओगे तो कानी कौड़ी के बराबर भी तुम्हारी कीमत न रहेगी ।

धूर्त—हमें जीतने की शक्ति है किसमें ?

हँसकर वह बोली—मैं आँधी द्वारा उड़ाये हुए वस्त्रों की खोज के लिए राजा की आज्ञा से निकली हूँ। मेरे दास भी गुमे हुए हैं। मैं उनकी खोज कर रही हूँ। ग्राम, नगर भटकती-भटकती यहाँ आई हुई हूँ। तुम्हीं मेरे दास हो! तुमने जो वस्त्र पहन रखे हैं वही वे वस्त्र हैं। यदि यह बात सत्य है तो वस्त्र दे दो; मिथ्या है तो भोजन दो।

इस पर सब चुप होगये।

—निशीथ० पृ० १०३

००

१२

उत्तेजक भोजन न करो !

काम्पिल्यपुर में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती राजा था। वह वर्ष में एक वार 'कल्याणक' नामक भोजन करता था। उस भोजन का विशिष्ट शक्ति के कारण चक्रवर्ती और उसकी पटरानी ही उपभोग कर सकते थे। उनके सिवाय कोई अन्य खाता तो उसे उन्माद (विकार) उत्पन्न हो जाता।

एक पुरोहित उस आहार का सेवन करना चाहता था। उसने एक वार चक्रवर्ती से कहा—कितने दिन होगये आपको राजसिंहासन पर बैठे ! मगर आपने कभी किसी को 'कल्याणक' भोजन नहीं जिमाया।

चक्रवर्ती ने हँसकर कहा—"यदि ऐसा समझते हो तो, कल ही आपको अपने ज्ञातिवर्ग और पूरे परिवार के साथ निमन्त्रण है।"

राजा ने उद्यान में उन सबको कल्याणक भोजन जिमाया।

भोजन इतना गरिष्ट और उत्तेजक था कि भोजन करते ही उन सबको 'मोह' का उदय हुआ और सब पागल की भाँति इन्द्रिय-धर्म (मैथुन) का सेवन करने लगे।

भावार्थ यह है—

"रसा पगामा न निसेवियव्वा"

—प्रकाम रसपूर्ण उत्तेजक भोजन (प्रणीत आहार) का सेवन करने से मोह विकार की उत्पत्ति होती है। अतः उसका वर्जन करना चाहिए।

—निशीथ० पृ० ५७२

○○

१२

व्यस्त रहो !

किसी गृहस्थ की लड़की दिनभर निकम्मी और सुखासन पर बैठी रहती थी। लड़की विवाहित थी, पति उसका परदेश गया हुआ था। वह अपने पिता के घर रहती थी। मालिस, मर्दन, उवटन और स्नान आदि में ही लगी रहती थी। इस कारण उसके चित्त में मोह-विकार उत्पन्न हो गया। उसने अपनी धाय से कहा—"मेरा मन चंचल होगया है, मेरे लिए किसी पुरुष को ले आओ।"

धाय ने उसकी माता से कहा और माता ने पिता से।

पिता ने लड़की को बुलाकर कहा—"बेटी ! यह दासियाँ धन-धान्य आदि का अपहरण करती रहती हैं। अतः तुम कोठार को सम्भाला करो।"

लड़की ने स्वीकार किया। अब वह किसी को भोजन सामग्री

देती, किसी को वृत्ति देती, किसी को चावल निकालकर देती। आय देखती, व्यय देखती। इस प्रकार सारा दिन कार्य में व्यस्त रहने से वह बुरी तरह थक जाती और शाम को जाकर बिस्तर पर गहरी नींद में सो जाती।

धाय ने उससे पूछा—क्या किसी पुरुष को तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिए लाऊं ?

लड़की के उत्तर दिया—नहीं, अब तो मुझे नींद आ रही है, मैं सोती हूँ।

भावार्थ यह है—जो गीतार्थ मुनि सूत्रपौरुषी के समय सूत्रार्थ में संलग्न रहता है, उसके चित्त में काम-विकार उत्पन्न नहीं होता। अर्थात् अपने को सदा काम में लगाये रखो।

—निशीथ उ० १।५७४

००

१४

खाली मन...

चंडप्रद्योत राजा के समय उज्जयिनी नगरी में नौ कुत्रिक आपण थे।

उस समय भरुकच्छ (भरौंच) के एक वणिक् ने कुत्रिक-आपण पर श्रद्धा न करते हुए उज्जयिनी में आकर कुत्रिक-आपण से भूत की मांग की। तब कुत्रिक-आपण के वणिक् ने विचार किया—'यह मेरे साथ ठगाई करना चाहता है। कीमत के द्वारा इसे रोकना चाहिए।' यह सोचकर उसने उत्तर दिया—'अगर एक लाख सिक्के दो तो भूत दूँ।' मगर उसने इतना मूल्य देना स्वीकार कर लिया। तब उसने कहा—पाँच दिन प्रतीक्षा करो, फिर दूँगा। तत्पश्चात् उसने तेला की तपस्या करके देवता से पूछा। देवता ने कहा—देखो, मगर उससे यह कह देना कि अगर

भूतको काम नहीं बतलाओगे तो वह तुम्हें मार डालेगा। भरुकच्छ के वणिक् ने यह शर्त भी स्वीकार करके भूत ले लिया।

भूत बोला—मुझे काम बतलाओ। वणिक् ने बतला दिया। चुटकियों में काम समाप्त करके फिर दूसरा काम माँगा। दूसरा काम बतलाया। उसे भी आनन-फानन करके फिर काम माँगा। वणिक् ने काम बतलाया और भूत ने उसे भी तुरन्त करके फिर काम माँगा। तब वणिक् ने एक खंभा दिखलाकर कहा—इस खंभे पर चढ़ो और उतरो। जब तक दूसरा काम न बतलाऊँ, बस यही उतरा-चढ़ी किये जाओ।

भूत को कहना पड़ा—बस करो सेठ, मैं अपनी पराजय अंगीकार करता हूँ। तुम्हारी नजर पड़ने से पूर्व ही मैं तालाब का निर्माण किये देता हूँ। वणिक् ने अश्व पर आरूढ़ होकर और बारह योजन जाकर देखा तो भरुकच्छ के उत्तर पार्श्व में भूत ने 'भूततड़ाग' का निर्माण कर दिया है।

भावार्थ है—भूत की तरह मन को भी सदा कार्य में व्यस्त रखना चाहिए। खाली मन, शैतान का घर है।

—बृहत्कल्पभाष्य ४२०-२२

○○

१५

अतिभोग से रोग

हेमपुरुष नगर में हेमकट राजा था। उसकी पत्नी का नाम हेमप्रभा था। पुत्र का नाम हेम था। उसका वर्ण तपे हुए सोने के सदृश सुन्दर था। कुमार युवा हो गया था। एकबार वह इन्द्रमह (इन्द्र महोत्सव) में इन्द्र के स्थान पर गया। वहाँ पाँच सौ रूपवती नागरिक कुलबालाओं पर उसकी दृष्टि पड़ी। वे अर्घ्य, पुष्प, धूप एवं धूपदानियाँ हाथ में लिये इन्द्र की ओर मुख किये खड़ी थीं। उन्हें देखकर उसने अपने सेवकों से पूछा—"ये किस प्रयोजन से आई हैं? क्या चाहती हैं?"

सेवकों ने उत्तर दिया—"ये इन्द्र से वर-याचना करने आई है और सौभाग्य चाहती हैं।"

कुमार बोला—"मैं इनका इन्द्र द्वारा प्रदत्त वर हूँ। इन सबको अन्तःपुर में डालदो।"

सेवकों ने उन सब बालाओं को अन्तःपुर में ले जाकर छोड़ दिया। तत्पश्चात् नागरिकजन राजा के समीप पहुँचे। बालाओं को मुक्त करने की प्रार्थना की।

राजा ने कहा—"क्या मेरा पुत्र तुम लोगों को जामाता के रूप में पसन्द नहीं है ?"

नागरिक चुप रहे। राजा की सम्मति समझकर वे अपने-अपने घर चले गये। कुमार ने सबका परिणयन किया। वह उनमें अत्यन्त गृद्ध होगया। उसका सारा वीर्य नष्ट होगया। वह मर गया। कोई कहते हैं—आखिर बेकाम समझकर स्त्रियों ने ही उसे मार डाला।

आचार्यों का कथन है कि अतिभोग मनुष्य को नपुंसक (निस्तेज) बना देते हैं।

—निशीथ० ११-३५७५

○○

१६

आसक्ति दुःख का मूल

सुस्थित नामक आचार्य का एक छोटा शिष्य था—कपिल। वह शय्यातर की लड़की (भूणिया) के साथ क्रीड़ा किया करता था। उसमें वह गृद्ध होगया। एकबार वह लड़की थोड़ी दूर पर गायों के वाड़े में गई। वहाँ से वह दूध-दही लेकर चली। कपिल उसी ओर भिक्षाचर्या के लिए गया। लड़की की इच्छा न होने पर भी उसे बीच में वलात् पकड़ लिया।

उसका पिता समीप में ही खेत में हल जोत रहा था। लड़की ने उससे सारा हाल कहा। पिता ने उसे रुधिरलिप्त अवस्था में देखा। पिता क्रोध से पागल हो उठा और हाथ में कुल्हाड़ा लेकर चला। कपिल उसी समय भिक्षा लेकर लौटा ही था। दृष्टि पड़ते ही उसने कपिल की पुरुष-इन्द्रिय काट डालीं।

कपिल भाग खड़ा हुआ। वह आचार्य के पास नहीं गया। पुरुष-इन्द्रिय के उपघात से उसके नपुंसक वेद उत्पन्न हुआ। एक बुढ़िया कुट्टनी ने उसे अपने पास रख लिया। वहाँ उसके स्त्रीवेद प्रकट हुआ।

इच्छा पर संयम न कर सकने के कारण मनुष्य को अपने पुरुषत्व से भी हाथ धोना पड़ता है। इसी बात का संकेत इस कथानक में किया गया है।

—निशीथ० ११-३५७६

○○

१७

काम प्रबल है

इसी अर्धभरत क्षेत्र में वाराणसी नगरी में जितशत्रु राजा था। उसके दो लड़के थे—शशक और भसक। एक लड़की थी—जिसका नाम था सुकुमारिका।

किसी समय शशक और भसक ने दीक्षा अंगीकार करली। दोनों गीतार्थ हो गए। तत्पश्चात् वे एकबार अपने परिजनों को देखने आए। उन्होंने देखा—सम्पूर्ण परिवार नष्ट हो गया है—सिर्फ सुकुमारिका बची है।

उन्होंने सुकुमारिका को दीक्षा दिलवा दी। उसे तुदमिणी नगरी में एक महत्तरिका आर्या के सुपुर्द करदी। सुकुमारिका अतीव रूपवती थी, अतएव वह भिक्षा, शौच आदि के लिए जहाँ कहीं भी जाती, युवक लोग उसके पीछे-पीछे लगे रहते। जब वह उपाश्रय के भीतर प्रविष्ट होती तब भी वे उसका पीछा न छोड़ते

—उपाश्रय के भीतर घुसकर बैठ जाते। साध्वियाँ इस विक्षेप के कारण प्रतिलेखना आदि कृत्य भी नहीं कर पाती थीं। तब महत्तरिका ने अपने गुरु से कहा—सुकुमारिका के कारण मेरी अन्य शिष्यायें भी विनष्ट हो जायेंगी।

गुरु ने शशक और भसक से कहा—तुम दोनों अपनी बहिन की रक्षा करो।

तब वे दोनों सुकुमारिका को अलग उपाश्रय में ले जाकर रहने लगे। उनमें से एक भिक्षा के लिए जाता तो दूसरा यत्न के साथ उसकी रक्षा करता था। दोनों सहस्रमल्ल थे। अतएव जो भी तरुण वहाँ आते, उनको वे हत-व्यथित करके भगा देते थे। मगर इस कारण द्वेषयुक्त होकर उन्होंने भिक्षा देना बन्द कर दिया। जब बहुत अटन करने पर भी तीनों के योग्य भिक्षा न मिली तो सुकुमारिका ने कहा—तुम मेरे कारण दुखी मत होओ, मैं भक्तप्रत्याख्यान कर लेती हूँ।

उसने भक्तप्रत्याख्यान कर लिया। मारणान्तिक समुद्घात की अवस्था में दोनों साधुओं ने समझा—यह मर गई है। तब एक ने उसके उपकरण उठाए और दूसरे ने उसे उठाया। राह चलते समय सुकुमारिका ने पुरुष के स्पर्श का संवेदन और आस्वादन किया—उसमें रति-अनुभूति जागृत हुई।

दोनों भाई उसके कलेवर को परिष्ठापन करके गुरु के समीप चले गये। वह रात्रि के समय शीतल वायु के स्पर्श से सचेतन हो

गई। प्रातःकाल एक सार्थवाहपुत्र की नजर उस पर पड़ गई। सुकुमारिका ने उससे कहा—'यदि मुझसे तुम्हारा कोई प्रयोजन हो तो मुझे संभाल लो।'

सार्थवाहपुत्र ने उसे संभाल लिया। वह उसकी स्त्री बनगई। मगर कुछ समय पश्चात् भिक्षा-के लिए अटन करते हुए अपने दोनों भाइयों को देखकर, उनके पैरों में गिरकर, रुदन करने लगी। उन्होंने अपनी वहिन को पहचान कर पुनः दीक्षा दी।

ब्रह्मचर्य की साधना में स्त्री को किसी भी स्थिति में पुरुष का संस्पर्श नहीं करना चाहिए, पुरुष को भी स्त्री संस्पर्श से बचकर ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए।

बृहत्कल्प०—५२५५-५६

००

१८

अधिक तप : अल्पफल

चम्पा नगरी में अनंगसेन नाम का एक स्वर्णकार रहता था। वह बहुत स्त्री-लोलुप था। जिस कन्या को रूपवती देखता, उसी को बहुत-सा धन देकर ब्याह लेता था। इस प्रकार उसने पाँच सौ कन्याओं के साथ विवाह किया। वह उनके साथ अत्यन्त कामभोग भोगता रहता था।

उधर पंचशैल नामक द्वीप में विद्युन्माली नामक एक यक्ष था। उसका च्यवन (मरण) होगया। उसकी दो अग्रमहिषियाँ थीं—हासा, प्रहासा। भोग की इच्छा से प्रेरित होकर वे सोचने लगी—किसी को लुभाएं? उन्हें अनंगसेन दिखाई दिया। वे सुन्दर रूप की विक्रिया करके अशोकवाटिका में आईं। अनंगसेन की उन पर नजर पड़ गई। उन्होंने मन को चंचल करने वाली चेष्टाएं कीं और वह चंचल-उन्मत्त होकर उनकी ओर हाथ

फैलाने लगा। तब उन्होंने कहा—'हमें चाहते हो तो पंचशैल द्वीप में आओ।' इतना कहकर वे अदृश्य हो गईं।

अनंगसेन उनके पीछे पागल हो उठा। उसने राजा को पण्णगार (धन) देकर घोषणा करवाई—जो अनंगसेन को पंचशैल द्वीप पहुँचायेगा, उसे वह एक करोड़ द्रविण देगा। एक वुड्ढे नापित ने उद्घोषणा स्वीकार करके कहा—'मैं पहुँचा दूँगा।' और उसने घोषणा रुकवा दी। अनंगसेन ने उसे एक करोड़ द्रविण दे दिया।

अब दोनों पाथेय लेकर नौका पर आरूढ़ हुए। चलते-चलते जब दूर पहुँचे तो नापित ने कहा—'आगे जल के ऊपर कुछ दिखाई देता है?'

अनंगसेन—'नहीं।'

कुछ और दूर जाकर पुनः प्रश्न किया तो उसने कहा—मनुष्य के सिर के बराबर अग्निवर्ण का कुछ नजर आ रहा है।

नापित—वह पंचशैल द्वीप की धारा में स्थित वटवृक्ष है। नौका उसके नीचे से जाएगी। इसके आगे जलावर्त्त है। तुम सावधान हो जाओ और कुछ खाने-पीने का लेकर वट की शाखा को पकड़ लेना। मैं नौका के साथ जलावर्त्त में जाऊँगा। तुम वट पर आरूढ़ रहना। संध्याकाल में बड़े-बड़े पक्षी पंचशैल द्वीप

से यहाँ आयेंगे और रात्रि में वास करके प्रभात में वापिस लौटेंगे। उनके पैर पकड़कर पंचशैल द्वीप चले जाना।

नापित के इतना कहते ही नौका वटवृक्ष के पास जा पहुँची, अनंगसेन वट पर आरूढ़ हुआ और वह जलावर्त्त में चला गया।

अनंगसेन नापित के कथनानुसार द्वीप में पहुँचा। दोनों यक्षिणियों से मिला। परन्तु उन्होंने कहा—इस प्रकार के (मानव के) अशुचि शरीर से हम परिभोग नहीं करतीं। कोई बालतपस्या करो और निदान करके यहाँ जन्म लो। तब हमारे साथ भोग भोगना।

यह कहकर उन्होंने उसे अत्यन्त स्वादिष्ट पत्र पुष्प और जल खाने पीने को दिये। उसे शीतल छाया में सुला दिया। जब वह सोया था तभी इन देवियों ने करतलपुट में उठाकर उसे चम्पा नगरी के उसके मकान में छोड़ दिया। जागकर उसने स्व-भवन और स्वजन-परिजनों को देखा। वह 'हासे! प्रहासे!' कहकर बड़बड़ाने लगा।

लोगों के पूछने पर उसने वह सब वृत्तान्त कहा जो पंचशैल द्वीप में सुना था और अनुभव किया था।

उसका एक मित्र था—णाइल श्रावक। उसने अनंगसेन को जिनोक्त धर्म का उपदेश दिया और कहा—इस धर्म का पालन करो। इससे सौधर्मादि स्वर्गों में दीर्घकालीन स्थितिवाली वैमा-

निक देवियों के साथ उत्तम भोग भोगोगे। इन अल्पकालीन स्थिति वाली वाण-व्यन्तर देवियों में क्या रक्खा है ?

मगर उसे यह उपदेश रुचिकर नहीं लगा। स्वजनों-परिजनों की परवाह न करके, निदान करके और इङ्गित मरण मरकर वह पंचशैल द्वीप में विद्युन्माली यक्ष के रूप में जन्मा और हासा और प्रहासा के साथ भोग भोगने लगा।

णाइल श्रावक संयम अङ्गीकार करके, अन्त में आलोचना-प्रतिक्रमण करके, शरीर त्यागकर अच्युतकल्प में सामानिक देव हुआ। वह वहाँ विचरने लगा।

एकबार नंदीश्वर द्वीप में अष्टाह्निक महोत्सव था। वहाँ इन्द्र के अनीकों द्वारा अपने-अपने नियोगों (कार्यों) में नियुक्त देवगण परस्पर मिले।

विद्युन्माली यक्ष का नियोग(कार्य) आतोद्य वादन, बाजे बजाना था। वह ढोल बजाना नहीं चाहता था, मगर देवगण उसे बलात् ले आये थे। वह दूरी पर खड़ा ढोल बजा रहा था। णाइलदेव ने उसे देखा। पूर्वस्नेह से प्रेरित होकर वह प्रतिबोध देने उसके पास गया। विद्युन्माली उसके तेज को सहन न कर सका तो उसने ढोल बीच में बंद कर दिया।

णाइलदेव ने पूछा—मुझे जानते हो ?

विद्युन्माली—नहीं जानता, आप शक्र आदि कौन इन्द्र हैं ?

णाइल—मैं पूर्वभव की वात पूछता हूँ, देवपर्याय की वात नहीं।

विद्युन्माली—नहीं पहचानता।

णाइल—मैं पूर्वभव में चम्पा नगरी में तुम्हारा मित्र णाइल था। उस समय तुमने मेरी वात नहीं मानी। इस कारण अल्प-र्द्धिक देव हुए। खैर, अव भी जिनप्रणीत धर्म अङ्गीकार करो। यह कहकर उसे धर्मवोध दिया। उसने जिनधर्म अङ्गीकार किया।

भाव यह है—तात्कालिक सुख और भोग के पीछे अंधा हो कर मनुष्य महान फलदायी असीम सुखों को ठोकर मार देता है, किन्तु जव आँख खुलती है तो अपने कृत्य पर पछतावा होता है। अतः पहले ही सावधान रहना चाहिए।

—निशीथ उ० १० पृ० १४१

००

१६

विषय-स्मृति से...

एक दरिद्र वालक ने किसी भोज में खूब डट कर भोजन किया। जब वह वाहर आया और राजमार्ग पर पहुँचा तो उसको कै हुई। मंत्री के भवन के नीचे ही वह वमन करने लगा। मंत्री ने उसे देखा। वालक ने वमन करके और उस आहार को न विगड़ा हुआ देखकर लोभ के कारण पुनः खाना आरम्भ कर दिया। यह देख मंत्री को भी उबकाई आई और वमन हो गया। अव मंत्री जव भी भोजन करने वैठता तो प्रतिदिन उसका स्मरण हो जाता! इस प्रकार होते-होते उसे 'वग्गली' व्याधि हो गई और वह मर गया।

भाव यह है कि साधु अनेक प्रकार के दृश्य देखता है, किंतु उन दृश्यों को मन में नहीं वसाना चाहिए। उनकी स्मृति नहीं करनी चाहिए। दृष्ट विषयों के स्मरण से भी संयम की घात होती है। —निशीथ० पृ० १०,२६३५

२०

कलह के कटुफल

एक आभीरी गाड़ी में घी भर कर अपने पति के साथ वेचने के लिए नगर में गई। उसके साथ अन्य घृतविक्रेता आभीर भी थे। नगर में पहुँच कर आभीर गाड़ी पर चढ़ गया और नीचे खड़ी आभीरी के सिर पर घी के घड़े देने लगा।

आभीर ने समझा—आभीर ने घड़ा पकड़ लिया है। आभीरी ने समझा—आभीर ने अभी छोड़ा नहीं है! इसी में घी का घड़ा नीचे गिर पड़ा और फूट गया। तब अभीरी बोली—मैं पकड़ न पाई और तुमने घड़ा छोड़ दिया! आभीर ने कहा—तूने ठीक तरह पकड़ा नहीं! दोनों में तू-मैं होकर कलह प्रारम्भ हो गया। फिर आभीर ने गाड़ी से उतर कर आभीरी को पीटना प्रारम्भ कर दिया! उनके इस कलह में जो घी बचा था, उसे कुत्ते चाट गए। कुछ जमीन में समा गया।

जब ये लड़ रहे थे तब तक अन्य घृतविक्रेताओं ने अपना-अपना घी बेच दिया। बाद में इन्होंने बेचा। इन्हें कम मूल्य मिला। दूसरे विक्रेता अपने गाँव चले गए। वे संध्या के समय में अकेले रह गए। रास्ते में चोरों ने उन्हें लूट लिया।

इसी प्रकार जो शिष्य सूत्रालापक को व्यत्याम्रेड़ित करता है, उसे आचार्य कहते हैं—ऐसा मत पढ़ो।

शिष्य उत्तर देता है—तुमने ही तो ऐसा सिखलाया था!

आचार्य कहते हैं—मैंने ऐसा नहीं सिखलाया था।

शिष्य कहता है—अब आप मुकरते हैं। इस प्रकार जो शिष्य ज्ञान की उपेक्षा कर कलह करता है, उसे सूत्रालापक देना उचित नहीं; वह उस झगड़ालु आभीर की भांति पछताता है।

बृहत्कल्प भाष्य, गा० २६०

◇◇

२१

क्रोध से हानि

चिन्ता और शोक के सागर में प्रविष्ट, हथेली पर मुख थामे हुए और अर्थोपार्जन की चिन्ता में डूबे हुए एक दरिद्र पुरुष को किसी परिव्राजक ने देखा। उससे पूछा—तुम क्यों इस प्रकार चिन्तातुर हो रहे हो ?

दरिद्र ने यथार्थ बात कह दी—मैं दरिद्रता से पीड़ित हूँ।

परिव्राजक बोला—मैं तुम्हें ऐश्वर्यवान् बना दूंगा। जहाँ जाने को कहूँ वहाँ जाना और जो करने को कहूँ वही करना।'

दरिद्र ने हाँ भरली। तब वह दोनों संबल लेकर एक पर्वत निकुंज में गए।

परिव्राजक ने उस दरिद्र से कहा—देखो, जो लोग सर्दी, गर्मी हवा और परिश्रम की परवाह नहीं करते, भूख-प्यास की वेदना

को सहते हैं, ब्रह्मचर्य पालते हैं, अचित्त कंद-मूल-पत्र-पुष्प-फल का आहार करते हैं और मन में भी रोष नहीं आने देते, उन्हीं को यह कनक-रस प्राप्त होता है। यही इसे प्राप्त करने की विधि है।"

दरिद्र ने भी इसी विधि से कनक-रस प्राप्त कर लिया। जब दोनों वापिस जाने लगे तो परिव्राजक ने उससे कहा—देख, कोई तुझे बहुत अधिक उत्तेजित करे तब भी क्रुद्ध हो कर इसे छोड मत देना।

अब परिव्राजक चलता-चलता बारम्बार उससे कहने लगा—'तू मेरे प्रभाव से ऐश्वर्यवान् होगा!' बार-बार इस प्रकार कहने से दरिद्र को क्रोध आ गया। उसने झुंझलाकर कहा—यदि तुम्हारे प्रभाव से मैं ऐश्वर्यवान् बनूंगा तो ऐसे ऐश्वर्य को मैं लात मारता हूँ।'

इस प्रकार कह कर दरिद्र ने कनक-रस जमीन पर गिरा दिया।

परिव्राजक के मुख से निकल पड़ा—"हा दुरात्मन्! यह तूने क्या किया! जिस कनक-रस को कठोरतम नियम ब्रह्मचर्य आदि की साधना करके पाया था, उसे यों क्षण भर में क्रुद्ध हो कर गवाँ दिया! तुम्हें अब पछताना पड़ेगा!"

भावार्थ यह है कि—किसी के कठोर कटु वचनों को सुनकर क्रुद्ध न बनो, स्वयं को संभाले रखो, और कषायवश होकर संयम रूप कनक-रस (स्वर्णरस) को फेंक मत दो।

—निशीथ० उ० १०-२७९२

००

२२

क्रोधी की शुद्धि नहीं

एक 'मरूत्रग' (व्राह्मण) था। उसके एक वैल था। खेत-जोतने के लिए वह वैल को लेकर रवाना हुआ, मगर वैल थक गया, गिर गया और उठने में समर्थ नहीं हुआ।

व्राह्मण ने वैल को पीटते-पीटते आरी लगाई। वैल फिर भी नहीं उठा। एक क्यारी के ढेलों से मारा, फिर भी नहीं उठा। चार क्यारियों के ढेर से मारा, फिर भी नहीं उठा। तव उसने वैल पर ढेलों का ढेर कर दिया और वैल मर गया।

व्राह्मण गौहत्या के पाप की शुद्धि के लिए अन्य व्राह्मणों के पास पहुँचा। सारी घटना सुनाई और कहा—

"आज भी उस वैल पर से मेरा क्रोध दूर नहीं हुआ है।"

व्राह्मणों ने कहा—तुम अतिक्रोधी हो। तुम्हारी शुद्धि नहीं हो सकती। हम तुम्हें प्रायश्चित्त नहीं देते।

सव लोगों ने उसे जाति से वाहर निकाल दिया। वह निन्दा व घृणा का पात्र वना।

—निशीथ० १०-३१९०-४

भावार्थ यह है कि—किसी के कठोर कटु वचनों को सुनकर क्रुद्ध न बनो,स्वयं को संभाले रखो, और कषायवश होकर संयम रूप कनक-रस (स्वर्णरस) को फेंक मत दो।

—निशीथ० उ० १०-२७९२

००

वहाँ से उद्वर्तन—निकल करके दोनों मनुष्य पर्याय में उत्पन्न हुए। इस पर्याय में जिन शासन को अंगीकार किया और सिद्धि प्राप्त की।

—निशीथ० १०—३३६५

—बृहत्कल्प—गा २७२३

◇◇

२३

वैर की लम्बी परम्परा

किसी ग्राम से चोरों ने गाएँ चुरा लीं। ग्राम महत्तर (मुखिया)—क्रुद्ध होकर उनके पीछे गया। परस्पर युद्ध होने लगा। चोरों का मुखिया ग्राममहत्तर के साथ युद्ध करने लगा। रौद्रध्यान के वशीभूत होकर दोनों एक दूसरे का वध करके मर गए। दोनों ही प्रथम पृथ्वी में नारक-रूप में जन्मे।

वहाँ से निकल कर दोनों महिषयूथ में यूथाधिपति हुए। वहाँ भी एक दूसरे को देख कर क्रुद्ध हुए और युद्ध करके, दोनों मर गए। इसबार दूसरी पृथ्वी में जन्मे।

वहाँ से निकल कर दोनों व्याघ्र हुए। वहाँ भी दोनों ने एक दूसरे का वध किया और तीसरी नरक पृथ्वी में उत्पन्न हुए।

वहाँ से निकल कर दोनों सिंह पर्याय में जन्मे। वहाँ भी परस्पर वध करके मरे। चौथी पृथ्वी में नारक हुए।

धन सेठ उन्हें उत्तर देता—"जो इसे रोक-टोक नहीं करेगा इसके सामने चूं नहीं करेगा, उसी को यह कन्या दी जायेगी। यों कहकर वह देने से इन्कार कर देता।

एकबार राजसचिव ने उसकी मँगनी की। धन सेठ ने कहा —"किसी अपराध पर भी अगर चूं न करने की प्रतिज्ञा करो तो आपको कन्या दूँ।" सचिव ने यह शर्त स्वीकार करली। विवाह हो गया। कन्या उसके घर चली गई। वह सदा उसकी आज्ञा का पालन करता, कभी भी चूं तक नहीं करता था।

सचिव राजकाज समाप्त करके एक पहर रात्रि वीतने पर घर लौटता था। उसकी पत्नी प्रतिदिन चिढ़ती थी कि—जल्दी क्यों नहीं आते। तव वह जल्दी आने लगा।

एक दिन राजा ने सोचा—आज-कल मंत्री जल्दी क्यों चला जाता है ?

दूसरों ने राजा से कहा—महाराज! वह पत्नी-भक्त है। अपनी पत्नी की आज्ञा नहीं टाल सकता।

राजा ने किसी समय उसे इधर-उधर के कुछ काम वतला कर जल्दी जाने से रोक दिया। मंत्री जाने को उत्सुक था, तथापि राजाज्ञा से रुक गया।

देर हो जाने से उसकी पत्नी रुष्ट हो गई और दरवाजा वन्द करके वैठ गई। मंत्री देर से घर पहुँचा और द्वार खोलने के लिए

२४

अहंकार का फल

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में जितशत्रु राजा था। धारिणी उसकी रानी थी। सुबुद्धि सचिव था। धन नामक सेठ था और भद्रा उसकी भार्या। धन के कई पुत्र थे, किन्तु कन्या नहीं थी।

माता, पिता और भाइयों ने बहन के लिए सैकड़ों मनौतियाँ मनाईं, तब उसके घर एक कन्या का जन्म हुआ जिसका स्नेह का नाम रखा गया—'भट्टा'। माता-पिता ने समस्त परिजनों से कह रखा था—"यह कुछ भी करे, कोई चूं न करे—रोक-टोक न करे। अतः लोगों ने उस कन्या का नाम 'अच्चंकारियभट्टा' रख दिया।

वह बड़ी रूपवती थी। कितने ही वणिकों ने उसकी मंगनी की।

वृत्तान्त कह सुनाया। भाई ने द्रव्य देकर उसे छुड़वाया। वह अपने घर ले गया। अनेक प्रकार की चिकित्सा से शरीर फिर स्वस्थ व कांतिमान हो गया।

अमात्य उसे वापिस घर ले गया। सर्वस्वामिनी बना दी। अब क्रोधपूर्वक मान करने का दुष्परिणाम देखकर उसने अभिग्रह (संकल्प) धारण किया—मैं अब क्रोध और मान नहीं करूँगी।

उसके घर में लक्षपाक तेल था। एक साधु ने घाव भरने के लिए औषधरूप में उसकी याचना की। उसने दासी को तेल लाने को लिए कहा। दासी लेकर आरही थी कि तेल का वर्तन फूट गया। इसी प्रकार दूसरा और फिर तीसरा वर्तन भी फूट गया। मगर उसने किंचित् भी क्रोध नहीं किया। तीन लाख की हानि होने पर चौथी वार उसने स्वयं उठकर तेल का दान किया।

मान के कुफल समझकर जब अच्चंकारियभट्टा ने मेरु जैसा कठोर और उन्नत मान भी जीत लिया तो साधु जो कि मान के कुफल से पूर्ण विज्ञ है, उसे तो और भी अच्छी तरह से मान को जीतना चाहिए।

—निशीथ १०,३१९४-७

कहा। मगर बहुत कहने पर भी जब उसने द्वार न खोला तो मंत्री ने कहा—"तुम्हीं मालकिन होकर रहना ! लो, मैं जाता हूँ।"

तब वह बोली—लो, मैं चली, ऐसा कह कर और द्वार खोल कर अपने पीहर चली गई। वह सभी आभूषण अलंकारों से विभूषित थी, अतएव बीच में चोरों ने पकड़ ली। चोर सब आभूषण छीन कर उसे सेनापति के पास ले गए।

सेनापति ने कहा—"तुम मेरी पत्नी बन जाओ। मगर सेनापति ने बलात् उसका भोग नहीं किया। उसने भी सेनापति की बात स्वीकार नहीं की।

सेनापति ने उसे जल्लक-वैद्य के हाथ बेच दी। उसने भी उसे पत्नी बनाना चाहा। किन्तु जब उसने उसकी भी बात नहीं मानी तो रुष्ट होकर वैद्य ने कहा—'अच्छा, तू जल में से जौंक पकड़ा कर। वह शरीर पर मक्खन चुपड़ कर जल में अवगाहन करती और जौंकें पकड़ती।

यद्यपि अपनी कुल-मर्यादा के प्रतिकूल कर्म उसको करना पड़ता था, फिर भी उसने शील खंडित करने की इच्छा तक नहीं की। कुछ दिनों में रुधिर के स्राव से उसका रूप नष्ट हो गया, लावण्य चला गया।

एकबार दौत्यकार्य से उसका भाई वहाँ आया। उसने उसे शक्ल-सूरत में अपने समान देखकर सारी बात पूछी। उसने समग्र

दीक्षा पालने में समर्थ नहीं हूँ।"

तब गुरु ने कुछ समय तक परिकर्म (तैयार) करा कर विद्या, मंत्र आदि का त्याग करवाया और अनशन का प्रत्याख्यान करा दिया। आचार्य ने श्रमण व श्रमणी दोनों वर्गों को मना कर दिया कि यह बात लोगों को मत कहना।

भक्त प्रत्याख्यान करने के पश्चात् वह बहुजनों से परिवृत नहीं रहती थी। लोग अब उसके पास नहीं आते थे। केवल कुछ साधु-साध्वी ही उसके पास रहते थे। अतएव उसे इस रूक्ष साधना से अरति उत्पन्न हुई और वह मन से ही लोगों का वशीकरण करने की विद्या का प्रयोग करने लगी।

तब लोग पुष्प धूप और गंध लेकर, अलंकृत-विभूषित होकर आये और उसकी वन्दना करने लगे।

आचार्य ने उभय वर्ग—साधु और साध्वी से पूछा—'तुमने लोगों को कुछ बतलाया है?'

उन्होंने कहा—'नहीं।'

उस साध्वी से पूछा तो वह बोली—"मेरी विद्या द्वारा प्रेरित होकर लोग आते हैं।"

गुरु ने कहा—"ऐसा नहीं हो सकता।"

साध्वी ने पुनः प्रतिक्रमण किया। लोग आने से रुक गए। इस तरह तीन बार सम्यक् प्रतिक्रमण किया। चौथी बार जब

२५

माया का दुष्फल

एक पार्श्वस्था—शिथिलाचारिणी-साध्वी थी। शरीरबकुश और उपकरणबकुश। सदैव हंस जैसे श्वेतवस्त्र धारण करके रहती और शरीर को साफ सुथरा न्हाया-धोया रखती थी। लोग इस कारण उसे 'पाण्डुआर्या' कहने लगे थे।

वह विद्या, मंत्र, वशीकरण, उच्चाटन एवं कौतुक कर्म की जानकार थी। लोगों पर उनका प्रयोग करती थी।

लोग उसके सामने मस्तक नवाते और हाथ जोड़े खड़े रहते।

आधी उम्र बीत जाने पर उसे वैराग्य आया। अपने गुरु से विज्ञप्ति की—'मैं आलोचना करना चाहती हूँ।'

आलोचना के पश्चात् उसने कहा—"मैं दीर्घ काल तक

२६

लालच बुरी बलाय

'कामिय' सरोवर के तट पर वंजुल नामक विशाल वृक्ष था। उस वृक्ष पर लटक कर जो सरोवर में कूदता था, वह यदि तिर्यंच होता तो मनुष्य बन जाता था और मनुष्य होता तो देव बन जाता था। अगर दूसरी बार कूदता तो फिर ज्यों का त्यों हो जाता था।

एक बंदर अपनी पत्नी के साथ वहाँ पानी पीने आया करता था। एकदिन जब वह आया तो उसने उक्त वार्ता सुनी और पत्नी के साथ विचार किया यदि हम दोनों वृक्ष पर चढ़कर कूदें तो मानव युगल बन जाएंगे।

वे कूदे और सुन्दर मनुष्य युगल बन गए। तब बानर ने कहा—एक बार फिर कूदें जिससे देवता बन जाएं। स्त्री ने

पुन:लोग आने लगे और उससे पूछा गया तो उसने मृषावाद झूठ बोल कर कह दिया—'ये लोग अब पूर्व अभ्यास (आदत के कारण) से आते हैं।''

इस मिथ्याभाषण व कपट-दोष की आलोचना किये विना ही वह काल-धर्म को प्राप्त हुई और सौधर्म स्वर्ग में ऐरावत (इन्द्र का हाथी) की अग्रमहिषी के रूप में जन्मी। तत्पश्चात् वह भगवान् वर्धमान के समवसरण में पहुँची। धर्मदेशना समाप्त हो जाने पर उसने हस्तिनी का रूप धारण करके भगवान् के सामने बहुत जोर से वात-कर्म किया।

गौतम स्वामी ने ज्ञायकपृच्छा की, जानते हुए भी प्रश्न किया। भगवान् ने उसका पूर्वभव बतलाया और कहा—कोई साधु या साध्वी माया का सेवन न करें। माया के दुष्परिणाम बड़े भयंकर होते हैं।

—निशीथ० १०-३१९८-९

२७

अधूरे का पूरा

किसी महिला का पुत्र रुग्ण हो गया। उसने वैद्य से चिकित्सा के विषय में पूछा। वैद्य ने दवाइयाँ देदीं।

तब उस महिला ने सोचा—यह दवाइयाँ तिक्त और कटुक हैं! इन्हें खिलाने से बालक को पीड़ा होगी। ऐसा सोचकर उसने दवाइयों का आधा-आधा भाग निकाल लिया। आधा भाग पुत्र को खिलाया, मगर (पूरी मात्रा न होने से) दवाइयों से लड़का नीरोग नहीं हुआ। रोगाक्रांत हो, मर गया।

इसी प्रकार जो हीन, दोषयुक्त सूत्रपाठ करता है उसे सूत्र का कोई लाभ नहीं होता, प्रत्युत अनेक प्रकार के उपद्रवों से ग्रस्त हो जाता है।

—बृहत्कल्पसूत्र

मना किया। कहा—कौन जाने, कदाचित न हुए ! तब पुरुष ने कहा—देव न हुए तो न सही। मनुष्यत्व तो नहीं मिट जाएगा !'

स्त्री के मना करने पर भी वह कूदा और पुनः वानर हो गया। राजपुरुष उस स्त्री को ले आए और वह रानी बन गई।

बन्दर को कलंदरों (मदारी) ने पकड़ लिया। उसे खेल करना सिखलाया। एक बार कलंदर राजा के सामने खेल दिखाने लगे। वह रानी भी राजा के साथ खेल देख रही थी। बानर उसे देखता और उसकी अभिलाषा करता था। तब दया प्रेरित होकर रानी ने उससे कहा—"वानर ! जब जैसा आ पड़े तब तैसा ही भोगना चाहिए !"

वानर अब अपनी लोभ दशा पर पछताता रहा।

कहानी का भाव यह है कि शास्त्र में जो, जितना जिस रूप में है उसमें अधिक करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। अधिक लालच बुरा होता है।

बृहत्कल्पसूत्र गाथा १९४

सेना के साथ रवाना हुए। देव ने मार्ग में अत्यन्त दुर्गंधित मृतक कुत्ते के रूप की विक्रिया की। उसके दांत अत्यन्त श्वेत और सुन्दर थे। जब सेना उधर से गुजरी तो आगे के सैनिक उत्तरीय वस्त्र से मुंह ढंक कर अगल-वगल से जाने लगे। पीछे चलते हुए कृष्ण ने इसका कारण पूछा। लोगों ने बतलाया—सड़ा कुत्ता पड़ा है। कृष्ण उसी मार्ग से चले। उन्होंने मुंह नहीं ढंका, नहीं बिगाड़ा और कहा—'अहा, कुत्ते के धवल दाँत कितने सुन्दर हैं!"

(ऐसा कह कर कृष्ण ने उसका गुण ही ग्रहण किया।) जब कृष्ण क्षुब्ध न हुए और लौट आए तो देव ने उनके एक अश्वरत्न (उत्तम अश्व) का अपहरण किया। कृष्ण को सूचना दी गई। कुमारों ने उसका पीछा किया, युद्ध किया। मगर वे हार गए। तब कृष्ण निकले। उन्होंने अश्व ले जाते हुए उससे पूछा—अरे अश्व का अपहरण क्यों कर रहा है?

देव बोला—मैं अमुक विद्याधर हूं, युद्ध करना चाहता हूँ?

कृष्ण—अच्छी बात है, मैं युद्ध के लिए तैयार हूँ। कैसा युद्ध करोगे?

देव—प्रतयुद्ध करूँगा (नितम्बों से लड़ूंगा!)

कृष्ण—मैं ऐसा युद्ध नहीं करता। जा, मैं पराजित हुआ। तू अश्व ले जा। देव ने दोनों परीक्षाओं में श्री कृष्ण को यथार्थ

२८

अपनी ओर से न मिलाओ

द्वारिका में श्रीकृष्ण वासुदेव थे। उनके यहाँ चार भेरियाँ थीं कौमुदिकी, संग्रामिकी, दुर्भूतिका और चौथी अशिवोपशमनी। चारों गोशीर्ष चन्दन की थीं और देवाधिष्ठित थीं। अशिवोपशमनी भेरी जहाँ बजाई जाती थी, वहां उसका शब्द सुनने वाले के समस्त रोग नष्ट हो जाते थे और आगे छह महीने तक नहीं होते थे। उसकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई—

इन्द्र ने अपनी सभा में कहा—केशव सर्व गुणग्राही हैं और नीच युद्ध नहीं करते इस कथन पर एक देव को विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा—मैं उनसे दुर्गुण ग्रहण करवाऊँगा और नीचयुद्ध करवाऊँगा।

एक वार कृष्ण भगवान नेमिनाथ को वन्दना करने के लिए

इसी प्रकार जो शिष्य सूत्र का आलापक श्रवण करके उसमें दूसरा कोई लौकिक या लोकोत्तर आलापक मिला देता है, वह भी सूत्र को गुदड़ी बनाता है। ऐसे शिष्य को सूत्र नहीं देना चाहिए।

—वृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३५६-३५६

पाया। तब अपने असली रूप की विक्रिया करके कहा—इन्द्र ने ठीक ही कहा था। यह कहकर उसने समग्र वृत्तान्त सुनाया और कहा—वर माँगिए!

कृष्ण—मुझे अशिवोपशमनी भेरी प्रदान कीजिए, जिसका शब्द सुनने से छह मास तक रोग उत्पन्न न हों और पूर्वोत्पन्न रोग नष्ट हो जाएँ!

देव भेरी देकर चला गया!

एक बार कोई विदेशी धनाढ्य वणिक् शिरोवेदना से पीड़ित होकर वहाँ आया। वैद्य ने उसे गोशीर्ष चन्दन लगाने के लिए कहा था। जब वह अन्यत्र नहीं मिला तो वणिक् ने बहुत-सा मूल्य देकर भेरी का एक खंड प्राप्त कर लिया। भेरी बजाने वाले ने उसके स्थान पर दूसरा टुकड़ा सांध दिया। इसी प्रकार अन्यान्य टुकड़े देकर उस भेरी को गुदड़ी बना डाला। परिणाम स्वरूप अब न तो भेरी का वैसा शब्द होता और न उसके शब्द से रोगों का उपशमन ही होता था! यह जानकर कृष्ण ने भेरी की जाँच करवाई तो मालूम हुआ कि वह तो गुदड़ी बन गई है!

कृष्ण ने भेरी वादक को दण्डित किया। तत्पश्चात् तेला की तपस्या करके और देव की आराधना करके दूसरी भेरी की याचना की। वह प्राप्त हुई। दूसरा भेरी वादक नियुक्त किया गया। उसने सावधानी के साथ भेरी की रक्षा की।

भर कर वृक्ष से नीचे गिराना और घोड़ों के सामने ढ़ोल बजाना। पत्थरों की खड़खड़ाहट से और ढ़ोल की आवाज से जो घोड़े घबराएँ नहीं तथा अधिक भार वहन कर सकें, वही दो घोड़े तुम ले लेना।

उसने ऐसा ही किया और दो घोड़े परख लिए। जब लेने का समय आगया तो वही घोड़े माँगे।

अश्वस्वामी ने सोचा—यही दो घोड़े सर्वोत्तम लक्षण सम्पन्न हैं, इन्हें कैसे देदूं! यह सोचकर उसने कहा—इन्हें छोड़ कर बाकी के कोई भी दो, तीन अथवा सारे के सारे घोड़े तू लेले। इन्हीं को लेकर क्या करेगा?

मगर उस आदमी ने उनके सिवाय दूसरे घोड़ों को लेना किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया। तब अश्व-स्वामी ने अपनी पत्नी से कहा—इस आदमी को अपनी लड़की ब्याह दें जिससे यह गृहजामाता बनकर यहीं रह जाय और लक्षण-सम्पन्न घोड़ों को लेकर अन्यत्र न चला जाय। किन्तु पत्नी ने उसे हीन पुरुष समझकर लड़की देना पसन्द नहीं किया। तब अश्वस्वामी ने अपनी पत्नी को समझाने के लिए बढ़ई का उदाहरण दिया—

एक बढ़ई ने अपनी लड़की देकर अपने भानजे को गृहजामाता बनाया। उसे कुछ भी धंधा न करते देख बढ़ई की लड़की बोली—बिना कुछ उद्योग किये पराये सहारे क्यों रहते हो? कुछ

२६

उत्तम अश्व

पारस देश में एक गृहस्थ के यहाँ प्रतिवर्ष ब्याने वाली बहुत-सी घोड़ियाँ थीं। इस कारण उसके यहाँ घोड़े भी बहुत थे। उसने घोड़ों और घोड़ियों की सार-संभाल के लिए एक आदमी को नियुक्त किया और उसे वेतन रूप में प्रतिवर्ष दो घोड़े देने तय किए।

उस आदमी की घोड़ों के स्वामी की लड़की के साथ संगति होगई। जब वेतन लेने का समय आया तो उसने लड़की से पूछा—इन घोड़ों में से उत्तम लक्षणों वाले दो घोड़े बतलाओ, जिससे मैं उन्हें ले लूं।

लड़की बोली—जंगल में जब सारे घोड़े वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहे हों तब चमड़े के एक कुतप—में पत्थर के टुकड़े

३०

बिन्दु के फेर से..

पाटिलपुत्र में चन्द्रगुप्त का पौत्र और बिन्दुसार का पुत्र अशोक राज्य करता था। अशोक का पुत्र कुणाल उज्जयिनी में रहता था। उज्जयिनी उसे जागीर में दी गई थी। उसकी उम्र छोटी थी।

एक बार अशोक को खबर मिली कि कुमार कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया है। तब राजा ने एक पत्र लिखा, जिसमें लिखा था—'अधीयतां कुमारः' अर्थात् अब कुमार का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया जाय।

उस समय कुमार की सौतली मां—राजा की दूसरी पत्नी पास में बैठी थी। उसने कहा—देखूं जरा पत्र! राजा ने पत्र उसे दे दिया। राजा जब अन्यमनस्क हुआ तब रानी ने

काम करो'

यह सुनकर वह कुल्हाड़ा लेकर काठ काटने के लिए जंगल की ओर गया। मगर उसे मन चाहा काष्ट नहीं मिला और वह प्रतिदिन जाकर इसी प्रकार खाली हाथ लौट आने लगा। छह महीने इसी प्रकार व्यतीत हो गए। तब कहीं उसे 'कृष्ण चित्रक' काष्ट मिला। उसे घड़ कर उसने कुलक (पायली जैसा धान्य मापने का माप) बनाया। अपनी पत्नी से कहा—इसे लेजा और एक लाख में वेचना!

स्त्री कुलक की कीमत एक लाख माँगती तो लोग हँसी करते। इसी वीच एक बुद्धिमान वणिक् वहाँ आ पहुँचा। उसने सोचा—यह इतनी कीमत माँग रही है, कोई विशेष कारण होना चाहिए! उसने उस कुलक से धान्य मापा तो वह समाप्त ही नहीं हुआ—अक्षय बना रहा। तब वणिक् ने एक लाख देकर कुलक खरीद लिया!

बढ़ई का कुटुम्ब मालामाल हो गया!

यह उदाहरण देकर अश्वस्वामी ने अपनी पत्नी से कहा—इसे गृहजामाता बनाने से घोड़े घर में रह जाएंगे और घोड़ों के प्रभाव से धन धान्य की वृद्धि होती रहेगी।

इसी प्रकार लक्षणयुक्त उपधि से गच्छ में ज्ञानादि की वृद्धि होती है।

—वृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३९५९-६०

उसने कहा—आपका पुत्र।

राजा ने पर्दा हटाया और उसे कंठ से लगाया। नेत्रों से नीर वहने लगा। पूछा—क्या तुम्हारे लिए एक काकिणी भी दुर्लभ है कि जिसकी याचना कर रहे हो ?

अमात्यों ने कहा—राजपुत्रों के लिए राज्य ही काकिणी होता है।

राजा बोला—नेत्रहीन राज्य का क्या करेगा ?

कुणाल ने कहा—मेरे पुत्र है।

राजा—कब जन्मा ?

कुणाल—सम्प्रति (अभी) हुआ है।

पुत्र लाया गया और उसका नाम 'सम्प्रति' ही रखा गया।

एक अनुस्वार की अधिकता का अर्थात् एक विन्दु के फेर का यह परिणाम निकला !

—वृहत्कल्प सूत्र, गाथा २९४

'अधीयतां' के अकार पर अनुसार बढ़ा कर उसे 'अंधीयतां' कर दिया। राजा ने वह पत्र रानी से लेकर और प्रमादवश बिना पढ़े ही, मोहर लगा कर उज्जयिनी भेज दिया।

पत्र उज्जयिनी में पहुँचा। पढ़ने वालों ने पढ़ा और वे चुप रह गए। जब पूछने पर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा तो कुमार ने स्वयं उसे पढ़ा! कुमार चकित रह गया, किन्तु उसने सोचा—हम मौर्यवंशियों की आज्ञा अनुल्लंघ्य होती है तो मैं अपने पिता की आज्ञा का अतिक्रमण कैसे कर सकता हूँ! उसने लोहे की तपी शलाकाएँ आँखों में आंज लीं।

राजा को यह वृत्तान्त विदित हुआ। उज्जयिनी दूसरे कुमार को दी गई और इस कुमार को दूसरा ग्राम दे दिया।

अन्धे कुमार कुणाल को पुत्रप्राप्ति हुई। कुणाल गान विद्या में अतीव निष्णात था। वह अज्ञात रूप से गाता हुआ घूम रहा था। राजा को खबर मिली कि एक अंधा कुशल गायक आया है।

राजा के आदेश पर कुणाल बुलाया गया। वह पर्दे के पीछे गाने लगा। राजा अशोक ने बहुत सन्तुष्ट होकर उससे पूछा—कहो, तुम्हें क्या दिया जाय? तब कुणाल ने कहा—चन्द्रगुप्त का प्रपुत्र, बिन्दुसार का नाती और अशोकश्री का पुत्र, यह अंधा काकिणी की याचना करता है।

राजा ने पूछा—तुम हो कौन?

अपने विल्व (वेल) के बराबर वड़े छिद्रों को देखकर भी अनदेखा करते हो ?

साधु समझ गया। वोला—'जान गया', मिच्छामि दुक्कडं।

देवताने अपना रूप प्रकट करके कहा—अकाल में पढ़ने से कहीं ऐसा न हो कि तुम तुच्छ देवताओं द्वारा छले जाओ ! अतः अकाल स्वाध्याय मत करो !

भाव यह है कि शास्त्र आदि का स्वाध्याय नियत स्वाध्याय काल में ही करना चाहिए। अकाल में स्वाध्याय करना निषिद्ध है।

—निशीथ सूत्र० १२

३१

छाछ विकाऊ है

मथुरा नगरी में एक साधु संध्या समय पौरुषी (प्रहर रात्रि) बीत जाने के बाद, उपयोगशून्य होकर कालिकश्रुत का पाठ कर रहा था। सम्यग्दृष्टि देवता ने उसे देखा और सोचा—'इसे कोई तुच्छ देवता छल न ले, अतः प्रतिबोध देना चाहिए।'

देवता ने आभीरी का रूप धारण करके और तक्र (मठा) से पूर्ण घट लेकर उसके आगे आना-जाना प्रारम्भ किया। वह बोल रहा था—'तक्र विकाऊ है—तक्र विकाऊ है !'

साधु ने सोचा—स्वाध्याय में बाधा पड़ती है ! तब उससे कहा—अरी, यह कौन-सा तक्रविक्रय का काल है ?

आभीरी ने कहा—तो तुम्हारे लिए भी यह कौन-सा स्वाध्याय का काल है ? सुई जितने पराये छिद्र तो देखते हो, मगर

३३

पादपूर्ति

राजगृह में भगवान् पधारे। एक विद्याधर भगवान् की वन्दना करने के पश्चात् वापिस लौटने के लिए विद्या का आह्वा-हन करने लगा। मगर उसे उस विद्या के कुछ अक्षर याद नहीं रहे। वह ऊपर उठता और फिर नीचे आ जाता। उसको बार-बार ऊपर उठते और नीचे गिरते देख अभयकुमार उसके पास पहुँचा। पूछने पर विद्याधर ने कारण बताया। तब अभय ने कहा—यदि वह विद्या मुझे भी दो तो मैं बतला दूं। विद्याधर ने उसकी बात मानली और विद्या का एक पद बोला। अभयकुमार ने पदानुसारिणी लब्धि से एक पद सुनकर भूले हुए अक्षरों का स्मरण कर लिया। विद्याधर को बतला दिये। विद्याधर अभय-कुमार को विद्या प्रदान करके उड़ गया।

शास्त्र, विद्या और औषधि अपूर्ण रहने पर कोई लाभ नहीं होता, पूर्णतः ही लाभकारी है।

—बृहत्कल्पसूत्र

३२

दोहरा दण्ड

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में जितशत्रु राजा था। उसने अपने राज्य में घोषणा करवाई—'म्लेच्छ राजा आ रहा है। जनता, ग्राम और नगर त्याग कर समीपवर्ती दुर्गों में रहे, जिससे विनाश से बच सकें।'

राजा की आज्ञा मान कर जो दुर्गों में जाकर रहे वे विनाश से बच गए। जो दुर्गों में नहीं गए उन्हें म्लेच्छों ने लूट लिया। उनके पास जो बच रहा उसे अपनी आज्ञा को भंग करने के अपराध में राजा ने दंड के रूप में ले लिया।

इसीप्रकार असज्झाय में सज्झाय करनेवालों को दोहरा दंड मिलता है। वे (इस भव में) देवता आदि द्वारा छले जाते हैं और (परभव में) ज्ञानादि की विराधना और प्रायश्चित के भागी होते हैं।

—निशीथ० १६-६०७६-७७

सही। मैं यहीं रहती हूँ, तुम जल्दी-जल्दी जाओ।

शीर्षक—मूर्खे ! मूर्खों के साथ विवाद करना वृथा है। तू मुखिया बन, मगर याद रखना, मेरे वंश का उच्छेद देखते हुए भी यदि तू नहीं मानती तो तू भी नष्ट हो जाएगी। इस काम का नतीजा तुझे पीछे मालूम पड़ेगा ! जैसे महाप्रवाह से परिपूर्ण नदी दोनों कूलों का विनाश करती है, उसी प्रकार स्वच्छन्द आचरण करने वाली नारी दोनों कुलों—पितृकुल और श्वसुरकुल—का विनाश करती है। अतएव तेरा यह कदाग्रह हितकर नहीं है।"

समय पर तुम उस खसद्रुभ की भाँति मारी जाओगी ! सुनो वह कहानी—इस प्रकार है—

एक सियार रात्रि के समय किसी के घर में घुस गया। घर के स्वामी ने उसे देख लिया और बाहर निकाल दिया। कुत्ता आदि जानवरों ने उसका पीछा किया तो वह नील रंग की मांद में गिर पड़ा। जैसे-तैसे वह उसमें से बाहर निकला, मगर उसका वर्ण नीला हो गया। उसे देखकर शरभ, तरक्ष, शृगाल आदि दूसरे जानवरों ने पूछा—तुम कौन हो ? उसने उत्तर दिया—समस्त चौपायों ने मुझे खसद्रुभ नामक मृगराज के पद पर प्रतिष्ठित किया है। तत्पश्चात् मैं यहाँ आया हूँ और देखता हूँ कौन मेरे आगे नहीं नमता है !

३४

मूर्ख मुखिया

एक सर्प सदैव इधर-उधर अवलोकन करता सुख से विचरता था। एक बार उसकी पुच्छिका—पूंछ (अनुयायिनी) ने मुख—(सिर) से कहा—हे शीर्षक ! तुम जहां कहीं भी, सर्दी, गर्मी, वर्षा में, अँधेरे में, मुझे लेजाते हो, वहाँ तुम्हारी पिछलग्गू होकर चलती रहती हूँ। किन्तु अब कुछ समय के लिए मैं तुम्हारी मुखिया बनना चाहती हूँ।

शीर्षक ने कहा—चलते समय मैं कंकरों और कांटों वाले मार्ग का त्याग करता हूँ और जहाँ मयूर, नकुल आदि उपद्रवकारी होते हैं, वहाँ नहीं जाता हूँ। तुम इनमें से एक भी बात नहीं जानती। अतएव मुखिया बनोगी तो दुःख उठाओगी !

पुच्छिका—अच्छी बात है, तुम ज्ञाता रहो, मैं मूर्खा ही

हाथ मनुष्य के जैसे हैं। तुम्हारे हृदय में विज्ञान है। मगर यह किस काम के ? तुम जलधाराओं को सहन कर रहे हो, फिर भी अपने लिए मकान नहीं बनाना चाहते ! वानर ! तुम्हारा दुःख देख कर मुझे भी सुख नहीं होरहा है !"

सुघरी ने दूसरी और फिर तीसरी बार वही बात कही। वानर को क्रोध आगया। वह उसी शाखा पर आ धमका जिस पर सुघरी का घौंसला था। उसने पूरी शक्ति से उस वृक्ष को हिलाना शुरू किया। वेचारी सुघरी फर्र से उड़कर दूसरे पेड़ पर चली गई। तब वानर ने उस घौंसले को तोड़कर तिनका-तिनका विखेर दिया ! कहा—"ले, तू भी मेरी तरह बे घर हो ! तूने मेरा अपमान किया !"

जैसे सुघरी ने वानर के हित की बात कही तो वानर उसी का शत्रु बन गया, इसी प्रकार तू भी हितोपदेश देने के कारण मेरे सिर पर सवार होरही है !

जैसे अन्धा चित्र के सौन्दर्य को और चन्द्रमा की कान्ति को नहीं देख सकता, उसीप्रकार चक्षुहीन होने से तू भी मार्ग को नही जानती। पंगु दूत कर्म नहीं कर सकता। अंधा पथप्रदर्शक नही हो सकता। इसी प्रकार तेरा गमन भी निर्विघ्न नहीं हो सकता।

यह सुनकर पुच्छिका ने कहा—सत्वहीन जन ही बुद्धिवल

जानवरों ने समझा—इसका रंग-रूप अद्भुत है। अवश्य ही इस पर देवताओं का अनुग्रह होगा। फिर उन्होंने कहा—हम सब आपके किंकर हैं। आदेश दीजिए क्या करें? तब खसद्रुभ ने कहा—मेरे लिए हाथी की सवारी का प्रबन्ध करो।

हाथी की सवारी का प्रबन्ध किया गया। वह उस पर आरूढ़ होकर घूमने लगा। एक बार शृगाल हुआँ-हुआँ करके चिल्लाए। खसद्रुभ अपने को रोक न सका—उसने भी आवाज की। हाथी को पता चल गया कि—अरे यह तो सियार है! यह पता चलते हीं उसने सूंड से पकड़ कर मार डाला।

हे पुच्छि! जैसे वह सियार आवाज सुनकर आवाज करने से मारा गया, उसी प्रकार तुम भी मारी जाओगी।

और तू मेरे हित वचनों पर भी क्रोध कर रही है? उस सुघरी की भांति तू मेरी शत्रु बन रही है? सुन—एक बार जोरों की वर्षा होरही थी। वृक्ष पर चढ़ा वानर थर-थर कांप रहा था। सुघरी नामक एक चिड़िया अपने घोंसले में बैठी थी! उसनें वानर से कहा—मैं तिनके तोड़-तोड़ कर लाई हूँ और वृक्ष के शिखर पर मैंने अपना घोंसला बनाया है, जहाँ हवा भी प्रवेश नहीं कर सकती। मैं इसमें आराम से निवास करती हूँ। में हँसती हूँ, रमती हूँ, वर्षा में भींगती नहीं हूँ, झूला झूलती हुई वसन्त ऋतु की भी विडम्बना कर रही हूँ। हे वानर! तुम्हारे

३५

अकाल स्वाध्याय

एक किसान खेत में सोता और शूकर आदि जानवरों को डराने के लिए 'सीग फूंका' (वजाया) करता था। एक वार कुछ चोर गाएँ चुराकर ले जारहे थे। किसान ने सींग वजाया। चोर डर गए। समझे—आरक्षकदल आरहा है और गाएँ वहीं छोड़कर भाग गए। प्रभात में गायों को देखकर वह अपने घर ले गया। उसने सोचा—सींग वजाने से गाएँ मुझे मिली हैं! वार-वार वजाऊँगा तो वार-वार मिलेगीं!

एक वार उसी ओर से चोर गाएँ चुरा कर ले जा रहे थे। उसने सींग वजाया। चोरों ने पकड़कर उसका वध कर डाला। गाएँ लेकर चलते वने।

समय पर ही सींग वजाना चाहिए। समय पर ही स्वाध्याय करना चाहिए। असमय पर किया गया कृत्य स्वयं के लिए ही हानिकारक होता है। □□

की डींग हाँकते हैं। सत्वशाली के लिए बुद्धि क्या करेगी ? वह तो अपने बल से ही समस्त कार्य सिद्ध कर लेता है। तुमने 'वीर भोग्या वसुन्धरा' यह उक्ति नहीं सुनी है ?

शीर्षक बोला—मूर्ख शिरोमणि ! तू निस्सन्देह मूर्खों के मार्ग पर या विनाश के पथ पर अग्रसर हो रही है। मगर नियति का विधान ऐसा ही है ! दुख यही है कि प्रतिकूल पथ पर चलकर तू अपने साथ मुझ जैसे अनेकों के प्राण संकट में डालेगी।

पुच्छिका फिर भी नहीं मानी। वह स्वच्छन्दचारिणी, अंधी होने के कारण थोड़ी ही देर आगे चली थी कि गाड़ी के नीचे कुचल कर मर गई !

अगीतार्थ—अल्पज्ञानी शिष्य स्वचछंद होकर जब गणनायक बनता है तो उसकी भी यही दशा होती है।

—वृहत्कल्पभाष्य, गाथा ३२४६-५७

अभय ने देवता की बात मानली। देवता ने भवन बना दिया।

आरक्षक पुरुष दिन-रात उसकी रखवाली करते थे। एक बार एक मातंगी (चाण्डाल स्त्री) को अकाल में आम का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने अपने पति से आम लाने को कहा। पति ने कहा—आम का मौसम नहीं है। पत्नी ने रोते हुए कहा—मैं कुछ नहीं जानती। जहाँ से जानो वहाँ से लाओ।

मातंग राज उद्यान में गया। वह दो विद्याएँ जानता था—अवनामिनी और उन्नामिनी। अवनामिनी विद्या से उसने आम नीचे करके पर्याप्त फल ग्रहण कर लिये। उन्नामिनी विद्या से पुनः उनकी शाखाएँ ऊपर कर दीं।

राजा को आम ग्रहण करने का वृत्तान्त विदित हुआ। उसने सोचा—"जिसकी इतनी शक्ति है वह कभी अन्तःपुर को भी लूट सकता है।"

अभयकुमार ने कहा—"सात रात्रि के भीतर-भीतर अगर चोर न पकड़ लिया तो मैं प्राण त्याग दूंगा।"

ऐसी प्रतिज्ञा करके अभय खोज करने लगा। उसने देखा—एक जगह बहुत-से लोग जमा हैं और गवैया की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वहाँ पहुँच कर उसने कहा—जब तक गायन आरंभ नहीं होता, तब तक एक आख्यान ही सुनलो। वह कहने लगा—

३६

विनय से विद्या

राजगृह नगर में श्रेणिक राजा था। इसकी रानी ने उससे कहा—मेरे लिए एकस्तंभ वाला भवन बनवाइए।

राजा ने बढ़ई बुलाए। वे वन में गए। वहाँ उन्हें लक्षण-सम्पन्न एक महाद्रुम दिखलाई दिया। धूप देकर बोले—जिस भूत आदि ने इस पर कब्जा कर रक्खा हो, वह दर्शन दे; जिससे हम इसे न काटें। इतना कहकर वे उस दिन लौट गए। जिस व्यन्तर ने उस पर कब्जा कर रक्खा था, उसने रात्रि में अभय कुमार को दर्शन दिया। उससे कहा—मैं समस्त ऋतुओं के फूल-फलों से युक्त, वनखण्ड तथा प्राकार से सुशोभित एकस्तंभ वाला भवन बनाए देता हूँ। मेरा निवासभूत पुराना वृक्ष न काटा जाय।'

माली बोला—पति ने आने की अनुमति कैसे दे दी ?

उसने सब सत्य वृत्तान्त कह सुनाया। माली सोचने लगा—यह सत्य प्रतिज्ञा है, इसीकारण सबने इसे मुक्त कर दिया। मैं कैसे इसका मन दुखाऊँ! यह सोच उसने भी मुक्त कर दिया। लौटते समय किसी ने भी उससे छेड़छाड़ नहीं की। वह 'अक्षत' रूप से पति के पास जा पहुँची।

यह कहानी कहकर अभय ने पूछा—बताओ, इन सब में से किसने दुष्कर कार्य किया ?

उनमें जो ईर्ष्यालु थे, वे बोले—उसके पति ने। जो भूखे थे, वे बोले—राक्षस ने।

परस्त्रीगामी बोले—माली ने !

मातंग बोला—चोरों ने !

अभय ने सोचा 'यही चोर है' फिर उसे पकड़ लिया और राजा के सामने पेश किया। पूछने पर उसने सच्ची बात बतला दी। राजा बोला—यदि तू अपनी विद्याएँ मुझे दे तो जीवित बच सकता है।

मातंग ने विद्या देना स्वीकार किया। राजा अपने आसन पर बैठा विद्याएं सीखने लगा। मगर आई नहीं। अभयकुमार से पूछा तो उसने कहा—मातंग भूमि पर बैठा है, आप आसन पर हैं। इस प्रकार अविनय से विद्या नहीं आती।

एक दरिद्र श्रेष्ठिकुल में रूपवती कुमारी थी। वह एक उद्यान में चोरी से फूल तोड़ा करती थी और उन फूलों से कामदेव की अर्चना करती थी। एक बार माली ने उसे पकड़ लिया। तब उसने कहा—मुझे भ्रष्ट मत करो। तुम्हारी भी तो भगिनी या भागिनेयी हैं !

माली—"इससे क्या हुआ ! हाँ एक शर्त पर छोड़ सकता हूँ। जब तुम्हारा विवाह हो जाय तो पहले-पहल मेरे समीप आना। यह शर्तं स्वीकार हो तो छोड़ दूं।"

कुमारी ने शर्त स्वीकार करली। माली ने उसे छोड़ दिया। विवाह के पश्चात् वह वासगृह (पतिगृह) में प्रविष्ट हुई। पति से पूर्ववृत्तान्त कहा। पति की अनुमति लेकर वह उद्यान की ओर चली, किन्तु मार्ग में चोरों के हाथ पड़ गई। चोर उसके आभूषण लेने ललचाए। उसने जब सही बात कही तो, इसे सत्य-वादिनी समझकर चोरों ने भी छोड़ दिया। कि आते समय गहने उतार लेंगे। आगे चली। छह महीने के भूखे एक राक्षस के पल्ले पड़ गई। उससे भी सब सत्य वृत्तान्त कहा तो उसने भी आते समय देखूंगा सोचकर छुट्टी देदी। तब वह माली के पास पहुँची।

माली ने देखकर कहा—कहाँ से आरही हो !

उसने पिछली बात कही। अपना वचन पूरा करने आई हूं !

२७

अपनी आँख

उज्जयिनी नगरी में सोमिल नामक ब्राह्मण निवास करता था। वह अंधा होगया। उसके आठ पुत्र थे, आठ पुत्रवधुएँ थीं। पुत्र उससे कहते—आँखों को क्रिया (चिकित्सा) करवालो, वह उत्तर देता—"तुम आठ पुत्रों की सोलह आँखें हैं, पुत्रवधुओं की भी सोलह आँखें हैं। दो आँखें ब्राह्मणी की हैं। चौतीस आँखें यह हैं। इनके अतिरिक्त परिजनों की भी आँखें हैं। यह सब मेरी ही तो हैं। मेरे लिए यह पर्याप्त है।"

एक बार उसके घर में आग लग गई। पुत्र आदि सभी अपने-अपने प्राण बचाने के लिए भागे। उसे किसी ने नहीं निकाला। वह हाय-हाय करता घर में ही जल मरा।

आचार्य कहते हैं—शिष्यो ! यदि तुम स्वयं नहीं पढ़ोगे और दूसरों पर निर्भर रहोगे तो अशुभ कर्मों से संसार में दग्ध हो ओगे।

मातंग को दूसरा ऊँचा आसन दिया गया। राजा उससे नीचे हो गया। तब विद्या सिद्ध होगई।

इस प्रकार विनय से गृहीत ज्ञान फलदायक होता है।

आचार्य के आगमन से वहाँ के अन्ययूथिकों (अन्यदार्शनिकों) का प्रभाव उसी प्रकार तिरोहित हो गया जैसे सूर्य का उदय होने पर खद्योतों की चमक विलीन हो जाती है। वे उनकी महिमा को सहन न कर सके। तब उन्होंने एकत्र होकर आचार्य को वाद में पराजित करने का मंसूबा किया। सोचा—इस आचार्य को तृण से भी हल्का बना दें! ऐसा विचार कर वे आचार्य के पास आए, किन्तु उन्होंने विद्वज्जनों के समक्ष सब को चुप कर दिया। इस घटना से आचार्य की महिमा और बढ़ गई। कीर्ति फैली; अन्ययूथिकों का पराभव हुआ। श्रावकों की प्रसन्नता का पार नहीं रहा।

कुछ दिनों तक आचार्य वहाँ ठहर कर और अनेक भव्य जीवों की मिथ्यात्व-निद्रा को दूर करके कहीं अन्यत्र विहार कर गए। उनके चले जाने के बाद अन्ययूथिकों को अवसर मिला और वे प्रवचन का अवर्णवाद करने लगे। श्रावकों से कहने लगे—'श्वेताम्बरोपासको! अगर तुम्हारे यहाँ कोई वादी हो तो लाओ हमारे सामने!' श्रावकों ने कहा—क्यों वृथा प्रलाप करते हो! अभी-अभी हुए ताजा पराभव को भी भूल गए! खैर, किसी वाचक या गणी को आने दो। फिर तुम जो कहोगे, वही करेंगे।

किसी समय वहाँ उत्सारकल्पिक वाचक आ पहुँचे। वे

३८

अल्पज्ञता से उपहास

प्राचीनकाल में कोई पूर्वों के अन्तर्गत सूत्र और अर्थ के ज्ञाता आचार्य थे। उन्हें 'वाचक' पद प्राप्त था। वे सर्वज्ञ के शासन-कमल को विकसित करने के लिए सूर्य के समान थे। अपने उपदेश की वर्षा से भूतल को धर्ममय बना रहे थे। जैसे गंधहस्ती अनेक हाथियों से परिवृत होता है, उसी प्रकार वे अनेक गुणवान् शिष्यों से परिवृत थे। एक बार किसी ग्राम में पहुंचे। वहाँ जीवाजीवादि पदार्थों के ज्ञाता अनेक श्रमणोपासक निवास करते थे। आचार्य का आगमन सुनकर वे सब आए और हर्षित हो, वन्दना करके सामने बैठ गए। आचार्य ने धर्मदेशना प्रारंभ की। धर्मदेशना समाप्त होने पर सभी श्रावक उनके गुणों का वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थान पर चले गये।

—यह वाचक शरद्-ऋतु के वादल की तरह वाहर ही गर्जना करता है, भीतर से खाली है—कुछ नहीं जानता। ऐसा विचार करके सव मिल कर और वहुत—से लोगों को साथ लेकर वाचक के पास पहुँचे।

वाचक अपनी तुच्छता का विचार कर वड़े जनसमूह को देखकर घवड़ा उठे। मस्तक पर पसीना आ गया। अन्यतीर्थिकों ने आडम्वर के साथ प्रश्न उपस्थित किया, किन्तु वाचक उनका कुछ भी उत्तर नहीं दे सके।

अन्यतीर्थिकों ने विजय की घोषणा कर दी। प्रवचन का अपवाद होने लगा। श्रावकों के मुख-कमल मुरझा गए।

—अल्पज्ञ व्यक्ति को उत्तर न आये तो मौन रहना चाहिए, किन्तु असत्य उत्तर देकर प्रवचन आदि की हीलना नहीं करनी चाहिए।

—वृहत्कल्पसूत्र गाथा ७१७

अपने पाण्डित्य से त्रिभुवन को तिनके के समान मानते थे। उनके आगमन से प्रसन्न हुए श्रावक अन्ययूथिकों के पास पहुँचे। बोले —'उस समय आपने वाद के लिए चुनौती दी थी और हमने कहा था कि किसी वाचक के आने पर तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे। सो अब वाचक पधार गए हैं। उनके साथ वाद करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।' इस प्रकार कह कर श्रावक लौट आए

अन्ययूथिक पिछले पराभव के कारण भयभीत हुए। उन्होंने एक प्रच्छन्न वेषधारी को यह जानने के लिए भेजा कि यह वाचक शास्त्रज्ञ और वाग्मी हैं या नहीं? उसने आकर वाचक से प्रश्न किया—परमाणु पुद्‌गल के कितनी इन्द्रियाँ होती हैं?

उत्सारकल्पिक वाचक का ज्ञान अत्यल्प था। वह पल्लव-मात्रग्राही थे और अव्यभिचारी वचनों से अनभिज्ञ थे। वह सोचने लगे—जो परमाणुपुद्‌गल एक लोकान्त से दूसरे लोकान्त तक एक ही समय में जा सकता है, निश्चय ही वह पंचेन्द्रिय होना चाहिए। ऐसा न होता तो उसमें इतनी गति-शक्ति कैसे होती? इस प्रकार सोचकर उन्होंने उत्तर दिया—भद्र! परमाणुपुद्‌गल के पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।

यह उत्तर सुनकर वह लौट गया और अन्ययूथिकों के पास पहुँचा। सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब उन्होंने विचार किया

भेड़िये भी भय से भागे। वरक्खुओं ने देखा। भागने का कारण पूछा। उन्होंने कहा—कोई आ रहा है, जल्दी भागो। उन्हें भागते देख चीतों ने यही प्रश्न किया। उन्होंने भी यही उत्तर दिया—कोई आ रहा है, भागो। चीते भागे। उन्हें सिंह ने देख लिया। सिंह के पूछने पर चीतों ने भी वही कहा। सिंह ने सोचा पानी का शब्द सुन कर जूते उतार लेना ठीक नहीं। तलाशना—चाहिए कि मामला क्या है? उसने खोज की। भेद खुला कि यह तो श्रृगाल है!

सिंह ने उसे मार डाला और सबको सान्त्वना दी—डरो मत! उसे मैंने मार डाला है। वह तो श्रृगाल है, किसी ने उसे द्वीपिक का चमड़ा लपेट कर गले में घण्टा बाँध दिया था!

—वृहकल्प ७२१-२३

३९

घंटा श्रृगाल

एक गाथापति के ईख के खेत में बहुत अच्छी फसल हुई थी। श्रृगाल आकर उसे खा जाते थे। तब इस इक्षु-स्वामी ने श्रृगालों को पकड़ने के लिए खेत के चारों ओर एक खाई खोदी। खाई में एक श्रृगाल गिर गया। उस बेचारे श्रृगाल को पकड़ कर, उसके कान और पूंछ काट कर, द्वीपिका (बाघ) के चमड़े से मढ़कर और गले में घंटा बाँध कर छोड़ दिया। भागते हुए उस श्रृगाल को दूसरे श्रृगालों ने देखा, वे उसे अपने से भिन्न प्रकार का जानवर समझ कर भयभीत हो भाग गए।

भागते श्रृगालों को भेड़ियों ने देखा और भागने का कारण पूछा। वे बोले—विचित्र आवाज करता हुआ कोई अनोखा जानवर आ रहा है।

अधिक आग्रह करें तो डाँट-फटकार के बाद कह देना—'वे सुवर्ण-भूमि में सागर के पास चले गए हैं।'

रात्रि में शिष्यों को सोता छोड़ वे सुवर्णभूमि की ओर चल दिए और एक वृद्ध का रूप धारण करके आर्यसागर के गच्छ में पहुँचे। सागराचार्य ने उन्हें कोई वृद्ध समझा और उत्थान आदि करके उनका सत्कार नहीं किया।

तत्पश्चात् अर्धपौरुषी का समय हुआ—सागराचार्य अपने-अपने शिष्यों को सूत्र का अर्थ सिखाने लगे। उन्होंने आर्य कालक से पूछा—वृद्ध, समझ में आता है? आर्य बोले—हाँ, आता है।

सागर ने गर्व के साथ अर्थ का कथन किया।

उधर जब प्रभात हुआ और आचार्य दृष्टिगोचर न हुए तो उनके शिष्य खोज करने लगे। गृहस्वामी से पूछा। उसने पहले तो आर्यकालक के विषय में कुछ न बतलाते हुए कहा—आपके आचार्य ने जब आपसे ही कुछ नहीं कहा तो मुझसे कैसे कहते! किन्तु जब वे बहुत आतुर हुए और आग्रह करने लगे तब उसने कहा—'आप लोगों से दुखी होकर वे सागराचार्य के पास सुवर्ण-भूमि चले गए हैं।' ऐसा कह कर उसने उन साधुओं को भला-बुरा कहा।

तदनन्तर वे साधु भी सुवर्णभूमि की ओर रवाना हुए। मार्ग में लोग पूछते कि किस आचार्य का विहार हो रहा है? तो उन्हें

४०

सुवर्णभूमि की ओर

उज्जयिनी नगरी में आर्य कालक नामक आचार्य विचरण कर रहे थे। वे सूत्र और अर्थ के ज्ञाता तथा बहुत से शिष्यों से युक्त थे। उनका प्रशिष्य आर्य सागर भी सूत्र-अर्थ का धारक था। वह सुवर्णभूमि में था।

आर्य कालक ने विचार किया—मेरे यह शिष्य अनुयोग (आगम की व्याख्या) नहीं श्रवण करते, तो इनके साथ रहने से क्या लाभ है! मुझे वहाँ चला जाना चाहिए जहाँ अनुयोग की प्रवृत्ति कर सकूं। मेरे ऐसा करने से ये शिष्य भी लज्जित होकर बाद में अनुयोग श्रवण करने लगेंगे। इस प्रकार विचार कर उन्होंने शय्यातर (गृहस्वामी) से पूछा—मैं अन्यत्र किस प्रकार जाऊँ? मेरे शिष्यों को जब पता चले और तुमसे पूछें तो तुम मत बतलाना।

न करना। तत्पचात् 'मिच्छा मि दुक्कडं' करके आर्य कालक ने अपने शिष्यों और प्रशिष्यों के समक्ष अनुयोग का कथन आरम्भ किया।

—वृहत्कल्पसूत्र

□□

उत्तर देते—आर्य कालक पधार रहे हैं।

सुवर्णभूमि में आचार्य सागर को लोगों ने बतलाया—आर्य कालक अपने शिष्य परिवार के साथ यहाँ पधार रहे हैं। अभी मार्ग में हैं। सागर ने अपने शिष्यों से कहा—मेरे आर्य (गुरुजी) आ रहे हैं। उनसे पदार्थ पूछेंगे।

वे शिष्य वहाँ पहुँचे। उन्होंने पूछा—क्या आचार्य यहाँ पधारे हैं? उत्तर मिला—नहीं पधारे। फिर दूसरे शिष्य भी आ पहुँचे। उन्होंने जब आचार्य कालक को वन्दना की तब सबको पता लगा कि—ये आचार्य हैं!

अपने गुरु को पहचान कर सागर लज्जित हुआ और बोला-मैंने क्षमाश्रमण के सामने बहुत बकवास किया और उनसे वन्दना करवाई है। उसने इस आशातना के लिए 'मिच्छामिदुक्कडं' कह कर प्रायश्चित्त लिया। उसने आचार्य से पूछा—क्षमाश्रमण! मैं कैसी प्ररूपणा करता हूँ?

आचार्य बोले—सुन्दर; पर गर्व न करना। यह कह कर उन्होंने धूलीपुंज का दृष्टान्त कहा—जैसे अंजलि में भरी हुई धूल कुछ न कुछ खिरती ही जाती है, उसी प्रकार आगम का अर्थ भी खिरता—क्षीण होता रहता है। तीर्थंकरों से गणधरों के पास आया, गणधरों से आचार्य, उपाध्याय, परम्परा से हम तक आया है। किसे मालूम कि किसके कितने पर्याय खिर गए? अत एव तू गर्व

वस्त्र आदि अन्य वस्तुओं के विक्रेताओं को भी कह दिया कि साधुओं को जितना चाहिए, दे देना। उसका मूल्य मैं दूंगा।

इस प्रकार साधु जव किमिच्छिक दान लेने लगे तो आर्य महागिरि ने आर्य सुहस्ती से कहा—'आर्य, आप जानते ही हैं। अनैषणा नहीं होनी चाहिए,।

आर्य सुहस्ती अनैषणा को जानते हुए भी शिष्य ममता से प्रेरित होकर वोले—साधारण जन राजा का अनुकरण करते हैं। राजा भद्र होता है तो जनता भी भद्र होती है। इससे धर्म की वृद्धि होती है।

आर्य सुहस्ती का उत्तर सुन कर आर्यमहागिरि ने उनसे सम्भोग-विच्छेद कर लिया। तव उन्हें अनैषिणक भोगने का ख्याल आया और उन्होंने अकल्प-सेवना को त्याग दिया।

सम्प्रति ने आस-पास के राजाओं को वुलवाया। उन्हें धर्म का उपदेश सुनवाया और सम्यक्त्व ग्रहण करवाया। वे भी श्रावक वने।

उज्जयिनी में रथयात्रा निकलती तो राजा सम्प्रति भी उसके साथ निकलता, भक्ति करता, दान करता, आगत राजा भी इसी प्रकार करते थे।

सम्प्रति राजा ने उन्हें विदा किया और वे जब अपने-अपने राज्यों में गए तो वहाँ चैत्यगृह वनवाए, रथयात्रा निकलवाई।

४१

अनैषणिक आहार

पूर्वभव में सम्प्रति भिक्षुक था, यह स्मरण करके उसने नगरी के चारों द्वारों पर चार भोजनशालाएँ बनवाई थीं। उधर से आता—जाता जो भी भोजन करना चाहता, करता था। जो भोजन शेष बच जाता था, वह महानसिकों (रसोईदारों) का हो जाता था।

एकबार राजा ने महानसिकों से पूछा—शेष भोजन का क्या करते हो?

उत्तर मिला—घर ले जाते हैं।

राजा—बिना खाया जो भोजन शेष रहे, वह साधुओं को दिया करो। मैं तुम्हें उसका मूल्य चुका दूंगा।

महानसिक साधुओं को देने लगे। इसी प्रकार राजा ने तेल,

४२

कपट प्रगट हो गया

आभीर देश में कृष्णवेण्णा नामक नदी थी। उसके किनारे ब्रह्मद्वीप नामक द्वीप था। वहाँ पाँच सौ तापस निवास करते थे। उनका कुलपति पादलेपयोग जानता था। उस योग के प्रभाव से वे तापस अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वदिवसों में नदी के परले किनारे से जल के ऊपर पैरों से चल कर वेण्णातट नगर में आया करते थे। जल के ऊपर वे ऐसे चलते जैसे भूमि पर चल रहे हों।

सब लोग उनसे प्रभावित हुए और भोजनादि से उनका सत्कार करते थे। अज्ञ श्रावक भी उनसे प्रभावित थे और कहते थे—यह तप का प्रत्यक्ष प्रभाव है!

दूसरे लोग श्रावकों को चिढ़ाते—"तुम्हारे प्रवचन में ऐसा चमत्कार नहीं है। ये तापस प्रत्यक्ष देवता हैं। इन्हें विनय-पूर्वक

वे सीमावर्ती राज्य थे—अंध, दमिल, कुडक्क और मरहट्ट। ये राज्य सम्प्रति राजा के समय से साधुओं के लिए सुख-विहार बने।

सम्प्रति ने साधुओं से इन राज्यों में जाने को निवेदन किया। कहा—धर्मबोध देते हुए विचरिए।

साधु बोले—वहाँ के गृहस्थ साधुओं का कल्प-अकल्प या ऐषणा नहीं जानते, कैसे विचरण करें?

तब सम्प्रति ने बहुत-से श्रमणवेषधारी भट्ट उन प्रदेशों में भेजे। वे साधुओं का कल्प-अकल्प समझाते हुए तथा ऐषणाशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते हुए गृहस्थों को भावित करने लगे। जब लोग ठीक तरह भावित हो गए तो साधुओं ने उन प्रदेशों में प्रवेश किया तभी से वहाँ के लोग भद्र बने और वे प्रदेश साधुओं के विहार योग्य हो गए।

—निशीथ० १६,सूत्र २६

उस जनसमूह में आये हुए और नदी के किनारे पर स्थित आचार्य ने कहा—"वेण्णे ! हमें मार्ग दो ।"

उसी समय नदी ने मार्ग दे दिया । आचार्य परले किनारे जा पहुँचे । पीछे से नदी ज्यों की त्यों हो गई । आचार्य पुनः इसी प्रकार लौट आए ।

यह देख सभी लोग और तापस विस्मित हो गए । बहुत लोग प्रभावित हुए । पाँच सौ तापस समिताचार्य के निकट दीक्षित हो गए । तभी से ब्रह्मद्वीपिक शाखा का उद्भव हुआ ।

—निशीथ० १३-४४७०-२

प्रणाम करो।"

एकबार वज्रस्वामी के मामा समित नामक आचार्य विहार करते-करते वहाँ जा पहुँचे। श्रावकों ने उन्हें सब वृत्तान्त कहा। वे मौन रहे।

तब श्रावकों ने दो-तीन बार कहा—"भगवन्! प्रवचन की हीलना हो रही है। कृपा कीजिए।"

आचार्य बोले—"यह मायाचारी हैं। पैरों में लेप करके नदी पार करते हैं। तुम उन सबको भोजन के लिए आमंत्रित करो और घर में लाकर उष्ण जल से पैरों को धो डालो।"

श्रावकों ने ऐसा ही किया। वे पाँव धोने को तैयार हुए। मगर तापसों ने अपनी अनिच्छा प्रकट की। तब श्रावकों ने कहा लोग आपका विनय करना नहीं जानते। हम आपका विनय करेंगे। विनय से दान का बहुत फल प्राप्त होता है। इस प्रकार कह कर श्रावकों ने उनके पाँव जबर्दस्ती धो डाले।

तत्पश्चात् श्रावकों ने उन्हें भोजनादि से सन्मानित किया। फिर बहुत लोगों के साथ वे वेण्णानदी के तट पर पहुँचे। पाद-लेप धुल चुका था, अतएव उन तापसों में से जो भी नदी में उतरा, डूब गया।

अब श्रावकों की बन आई। उन्होंने लोगों से कहा—ये मायाचारी हैं। इनके पास कोई चमत्कार नहीं हैं।

उस स्थविर को भिक्षा में जो प्राप्त होता, वह उसका अधिक भाग छोटे साधुओं को देता और स्वयं उनोदरी करता था। तब उन दोनों ने अन्तर्धान योग का प्रयोग किया। एक ने आँखों में अंजन आंज लिया, जिससे उसे दूसरा देख न सका। ऐसा करने से उन्हें उस योग पर विश्वास हो गया।

अब वे अन्तर्धान होकर राजा चन्द्रगुप्त के साथ भोजन करने लगे। राजा का अधिकांश भोजन वे चट कर जाते।

इस प्रकार कम भोजन करने से राजा चन्द्रगुप्त दुर्बल हो गया। चाणक्य ने उससे पूछा—'आपका शरीर क्षीण क्यों हो रहा है ?

राजा ने कहा—कोई अन्तर्हित होकर मेरा भोजन खा जाता है। पता नहीं वह कौन है !

तब चाणक्य ने भोजनशाला के चारों ओर दीवार बनवाई और केवल एक द्वार रहने दिया। द्वार पर भी ईंटों का बारीक चूरा बिखेर दिया। राजा अकेला अन्दर भोजन करने बैठा। उसी समय वे साधु आये और अन्दर घुस गये। चूरे पर उनके पैरों के निशान दिखाई दिये। चन्द्रगुप्त समझ गया—ये कोई पादचारी हैं और अंजनसिद्ध हैं।

उसने दरवाजा बन्द कर दिया और धुआं किया। धुआँ करने से आँखों में आये आँसुओं से अंजन बह गया और दोनों साधु

४३

दोष किसका ?

पाटलीपुत्र नगर में चन्द्रगुप्त राजा का चाणक्य मन्त्री था। वहाँ सुस्थित नामक आचार्य रहते थे।

आचार्य विहार करने में असमर्थ थे और नगर में दुष्काल था। अतः उन्होंने अपने एक शिष्य को गण का दायित्व सौंप कर सुभिक्ष प्रदेश की ओर विहार करवाया। आचार्य ने जाते हुए अपने उस शिष्य को एकान्त में अन्तर्धान होने का योग (विधि) बतलाया। वह अन्तर्धान—अंजनयोग दो छोटे साधुओं ने सुन लिया।

तत्पश्चात् गच्छ सुभिक्ष प्रदेश की ओर चला गया। वे दोनों छोटे साधु आचार्य के प्रति प्रीति रखते थे, अतएव गच्छ से निकलकर आचार्य के समीप जा पहुँचे।

४४

दोषदर्शी न बनो

संगम स्थविर नामक आचार्य विहार करते-करते 'कोल्लदूर' नगर में पहुँचे। नगर में दुर्भिक्ष था और आचार्य—जंघाबलपरि-क्षीण—चलने में असमर्थ थे। अतएव उन्होंने सिंह नामक अपने शिष्य को गण सौंपकर रवाना कर दिया और कहा—जहाँ सुभिक्ष हो, वहाँ विचरो। साधु चले गये। आचार्य कोल्लदूर नगर में ही ठहरे। वह 'क्षेत्र नित्यक' हो गये अर्थात् एक क्षेत्रवासी बन गये।

आचार्य ने उस नगर के नौ भाग कर लिये और उनमें मास-कल्प विहार करने लगे। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये। सिंह अनगार ने आचार्य की खोज-खबर लेने के लिए 'दत्त' नामक उनके एक शिष्य को भेजा। वह आचार्य को क्षेत्रनित्यक जानकर

दिखाई देने लगे।

चन्द्रगुप्त ने देखा और कहा—इन्होंने मुझे विटाल दिया—भ्रष्ट कर दिया।

चाणक्य ने कहा—यह ऋषि हैं, कुमारश्रमण हैं। इनके साथ भोजन करना पवित्र है। आप पूरी तरह अपवित्र हैं। आपने ही इन्हें विटाल दिया है।

चाणक्य ने बिना कुछ कहे उन्हें रवाना किया और स्थविर के पास जाकर कहा—"इन छोटे साधुओं को आप सम्भालते नही है ?"

स्थविर ने चाणक्य को उपालंभ देते हुए कहा—'तुम उत्तम श्रावक हो और इस दुष्काल में साधुओं के जीवन निर्वाह की व्यवस्था नहीं करते ?

चाणक्य ने स्थविर की प्रेरणा स्वीकार की। 'मिच्छामि दुक्कड़' लिया और साधुओं की भिक्षा की व्यवस्था की।

—निशीथ १३-४४६३

क्षेत्रदेवता ने रुष्ट होकर घोर दुर्दिन (बरसात के दिन) की विक्रिया की। वह साधु उपाश्रय से बाहर ठण्डी वायु से पीड़ित हो रहा था! गुरु ने कहा—अन्दर आ जाओ।

उसने उत्तर दिया—द्वार तो दिखता ही नहीं है!

तब गुरु ने अपनी उँगली श्लेष्म (थूक) से भरकर ऊँची उठाई तो वह दीपक की भाँति प्रज्वलित हो उठी। गुरु ने बताया—इधर से आ जाओ।

साधु यह अतिशय (चमत्कार) देखकर तुष्ट हुआ। उसने 'मिच्छा मि दुक्कडं' दिया।

—निशीथ १२, ४३६२.

परिभव के भय में उपाश्रय के बाहर ठहर गया। गुरु के साथ गोचरी के लिए गया। अन्य भिक्षा न मिलने के कारण उसके चित्त में संक्लेश हुआ, आखिर गुरु ने उसे स्थापनाकुल (पूर्वनियत गृह) से भिक्षा दिलवाई।

गुरु ने इस बात को जानकर एक श्रेष्ठि गृह में पूतना-गृहीत चेट (पिशाचिनी से आविष्ट) को देखकर कहा—चेट, रो मत।

पूतना गुरु के प्रभाव से अट्टहास करके भाग गई। सेठानी प्रसन्न हुई। वह लड्डू आदि लाई।

गुरु ने कहा—ले लो।

दत्त अनगार ने भिक्षा ले ली। सोचा—इनके यह निश्रा गृह है।

आचार्य अन्यत्र भिक्षा करके लौटे।

संध्याकाल में आवश्यक (प्रतिक्रमण) करते समय गुरु ने कहा—"सम्यक् आलोचना करना।"

उसने उपयोग लगाया और कहा—'स्मरण नहीं आता। क्या दोष लगा?'

गुरु ने कहा—'तुमने धात्रीपिण्ड भोगा है, लेकिन उसने यह स्वीकार नहीं किया।'

तब गुरु ने कहा—"सुचरित तपयोग से युक्त गुरु के छोटे-छोटे छिद्र देखते हो?"

मर्यादा टूट जायेगी। दूसरे साधु अशस्त्रोपहत तिल ग्रहण करने लगेंगे और कहेंगे—स्वयं तीर्थंकर ने ग्रहण किये थे।

यह प्रवचन में अनुधर्म है। लोकाचार की मर्यादा का पालन स्वयं तीर्थंकर भी करते हैं।

—निशीथ १५-४८५८

५४

लोक-मर्यादा (१)

एक बार भगवान् महावीर ने मगध देश से वीतभय नगर की ओर प्रस्थान किया। बीच में साधु क्षुधा से पीड़ित हुए। भगवान् जहाँ ठहरे थे, वहीं एक सार्थ भी ठहरा था। सार्थ की गाड़ियों में तिल भरे थे।

तिल क्षीणयोनिक थे—अचित्त हो चुके थे। अचित्त भूमि में रक्खे थे। उनमें न त्रस जीव उत्पन्न हुए थे, न इधर-उधर से आकर चढ़े थे। गृहस्थ उनको दान कर रहे थे—भगवन्! यदि ये तिल ग्राह्य हैं तो इन्हें ग्रहण कीजिये।

(इस प्रकार सर्वथा निर्दोष होने पर भी) भगवान् ने उन्हें ग्रहण नहीं किया। कहा—यह शस्त्र से उपहत नहीं है।

भगवान ने सोचा—यह तिल ग्रहण कर लिये जायेंगे तो

४७

रसलोलुपता से पतन

आचार्य आर्य मंगु वहुश्रुत, अध्यात्मवित्, वहुल शिष्य परिवार वाले और उद्यत विहारी (उग्रविहारी) थे। विहार करते-करते वे मथुरा नगरी में पहुँचे। श्रावकों ने वस्त्रादि से उनकी पूजा अर्चा की। दूध, दधि, घृत, गुड़, आदि प्रतिदिन वहराने लगे।

आचार्य साता-सुख में ऐसे आसक्त हुए कि विहार करने का नाम ही नहीं लेते थे। वहीं जम गये। अन्य साधु कहीं और विहार कर गये।

वह आलोचना-प्रतिक्रमण किये विना, श्रामण्य की विराधना करके मृत्यु को प्राप्त हुए और निर्धमन में व्यन्तर निकाय में यक्ष के रूप में जन्मे।

४६

लोक-मर्यादा (२)

निर्जीव अप्काय से पूर्ण एक द्रह था। त्रस जीवों से सर्वथ रहित था। द्रह की भूमि भी निर्जीव थी। द्रह का स्वामी जल दान कर रहा था। साधु पिपासा से पीड़ित थे। मगर भगवा ने 'यह जल शस्त्रपरिणत नहीं है' ऐसा कहकर उसके ग्रहण की अनुमति नहीं दी।

इसका भी कारण वही पूर्वोक्त था।

—निशीथ १५-४८५

४८

अपराध की चार श्रेणियाँ

एक गृहस्थ की चार पत्नियाँ थी। उनसे कोई अपराध वन गया। गृहस्थ ने चारों को घर से निकाल दिया।

एक किसी दूसरे के घर चली गई।

दूसरी मायके चली गई।

तीसरी गृहस्थ के एक मित्र के यहाँ गई।

चौथी दरवाजों को पकड़ कर बैठ गई। निकालने पर और मार-पीट करने पर भी नहीं गई। उसने कहा—'मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ ? मेरे लिए दूसरी कोई ठौर नहीं है। भले मारो, पीटो, मगर आपके सिवाय मेरे लिए कोई शरण नहीं।' ऐसा कह कर वह वहीं जमी रही।

गृहस्थ ने सन्तुष्ट होकर चौथी को गृहस्वामिनी बना दिया

जब साधु उस प्रदेश में आवागमन करते तब वह यक्ष प्रतिमा में प्रवेश करके खूब लम्बी जीभ निकालता। साधुओं के पूछने पर कहता—मैं साता-सुख में गृद्ध हो गया था। जिह्वा दोष के कारण अल्पधिक व्यन्तर हुआ हूँ। तुम्हें प्रतिबोध देने यहाँ आया हूं। तुम ऐसा न करना।

(कोई यों कहते हैं—जब साधु आहार करने बैठते तो वह सर्वालंकारयुक्त हाथ लम्बा करके गवाक्ष के द्वारा साधुओं के सामने पसारता था। साधुओं के पूछने पर कहता था—मैं वही आर्य मंगू हूँ। ऋद्धि, रस एवं प्रभाव की बहुलता के कारण मृत्यु को प्राप्त होकर निर्धमन में यक्ष हुआ हूँ। तुममें से कोई इस प्रकार लोभ दोष (रस लोलुपता) का सेवन न करना।

—निशीथ, १०, ३२००

४६

अपवाद मार्ग

एक वणिक् ने पहाड़ी मार्ग से यात्रा करके वहुत कष्ट उठाकर एक लाख मूल्य के पाँच सौ रत्न उपार्जन किये। तत्पश्चात् वह स्वदेश की ओर रवाना हुआ। वीच में, सीमावर्ती प्रदेश में एक अटवी पड़ती थी। वह शवरों, पुलिन्दों और चोरों से भरी थी। वणिक् ने विचार किया—कैसे यह अटवी निर्विघ्न पार की जाय ?

उसने उन रत्नों को एक निर्जन प्रदेश में गाड़ दिया और पत्थर के कुछ टुकड़े ले लिये ! उन्मत्त का वेष बना लिया और चोरों से व्याप्त अटवी में प्रविष्ट हुआ।

चोरों को सामने देखकर वह वोला—"मैं सागरदत्त नामक रत्नों का व्यापारी हूँ। मेरे रत्नों का अपहरण मत करना।"

जब उसका रोष दूर हो गया तो तीसरी को खरंटित (शब्दों से तर्जना आदि देकर) करके घर ले आया। दूसरी को, जो माय के गई थी, दूसरों के कहने-सुनने पर खरंटित और दण्डित करके घर में आने दिया। पहली जो दूसरे के घर चली गई थी, उससे सब सम्बन्ध तोड़ डाले। उसे कदाचित् आने भी दे तो बहुत बड़ा प्रायश्चित्त और दण्ड देकर ही।

अवसन्न (भ्रष्ट) साधु पहली के समान, असांभोगिक साधु दूसरी के समान, साँभोगिक साधु तीसरी के समान और स्वगच्छ में स्थित साधु चौथी पत्नी के समान हैं। वे जितने दूर जाते हैं, उतने ही अधिक दण्ड के भागी होते हैं।

—निशीथ उ० १०-२८३३.

(त्याग किये हुए) मृतक-जल के समान और सातिचार महाव्रत पत्थर के टुकड़ों के समान हैं। कारण उपस्थित होने पर वान्त-को (त्याग किये हुये को) ग्रहण करने वाला साधु अपने महाव्रतों की रक्षा कर सकता है।

—निशीथ, उ० १०, २९६१४

इस प्रकार प्रलाप करते वणिक् को चोरों ने पकड़ लिया और पूछा—कौन-से हैं तेरे रत्न ?

वणिक् ने पत्थर के टुकड़े दिखा दिए।

चोरों ने समझा—किसी ने इसके रत्न हर लिये हैं। उसी कारण यह पागल हो गया है। उन्होंने उसे छोड़ दिया। वणिक् ने पुष्प फल कन्द मूल आदि का आहार करते हुए वह अटवी पार की और अपने आवागमन से वहाँ के लोगों को परिचित कर लिया।

लोगों से जान-पहचान हो जाने के पश्चात् एक रात्रि में रत्न निकाल कर वह अटवी में पहुंचा। अटवी का बहुत-सा भाग जब बीत गया तो उसे प्यास सताने लगी। उसे एक कुंड में पानी दिखाई दिया, मगर वहाँ गो-गवय आदि के मृत कलेवर पड़े थे और उसका वर्ण-रस-गंध भी बदला हुआ (खराब) था। उसे देख वणिक् ने सोचा—यदि इस जल का पान नहीं करूँगा तो मर जाऊँगा। मेरा रत्नोपार्जन करना निरर्थक हो जायेगा और काम-भोगों से वंचित हो जाऊँगा। यह सोचकर उसने वही जल पीकर अटवी पार की और घर आकर स्वजन, धन एवं काम भोगों का आनन्द करने लगा। भाव यह है कि साधु वणिक् के समान है, महाव्रत रत्नों के समान है, उपसर्ग-परीषह चोरों के समान, वान्त

तब देवों ने ब्रह्महत्या के चार भाग कर दिए—एक भाग स्त्रियों के ऋतुकाल में, दूसरा जल में मल त्यागने वाले को, तीसरा ब्राह्मण के सुरापान में और चौथा गुरु पत्नी के साथ समागम करने में स्थापित किया। वह ब्रह्महत्या इन चार स्थानों में रह गई। इन्द्र देव लोक चला गया।

इस पौराणिक कथा का भाव है—अपने कृतपाप से स्वयं इन्द्र भी नहीं बच सकता, तो साधारण मनुष्य पाप कर उससे बचने की कैसे सोच सकता है?

—निशीथ १२, ४०९७

५०

मुक्ति

उडंक ऋषि की रूपवती पत्नी के साथ इन्द्र ने समागम किया। वाहर निकलते समय उसे उडंक ऋषि ने देख लिया और रुष्ट होकर शाप दिया कि "तू ने अगम्य ऋषि पत्नी के साथ गमन किया, अतः तुझे ब्रह्महत्या लगे।"

जब ब्रह्म हत्या उपस्थित हुई तो डर का मारा इन्द्र कुरुक्षेत्र में घुस गया। ब्रह्महत्या कुरुक्षेत्र के आस-पास घूमने लगी। इन्द्र इसके भय से वाहर नही निकलता था। उधर इन्द्र के बिना इन्द्रासन सूना पड़ा था। सब देवगण इन्द्र की खोज करते हुए कुरुक्षेत्र में पहुँचे और इन्द्र को स्वर्ग चलने को कहने लगे।

इन्द्र बोला—"मैं यहां से वाहर निकलूंगा तो ब्रह्म-हत्या मुझे लग जायगी।"

आरक्षकों (पहरेदारों) के भय से उस समय वह दुकान तक जा नहीं सकता था। अतएव वणिक् को बड़ी चिन्ता हुई—इसे भोजन कैसे कराया जाय ?

गृहिणी ने वणिक् के मन की वात जानकर कहा—"चिंता न करो। मैं उनके लिए सब प्रबन्ध करलूँगी।"

उसने उसे उत्तम भोजन जिमाया। मित्र संतुष्ट हुआ। प्रभात में पुनः भोजन करके वह चला गया। वणिक् भी वहुत संतुष्ट हुआ। उसने पूछा—"मैं तुम्हें परिमित सामग्री देता हूँ। तुमने यह सब भोजन व्यवस्था कैसे की ?" गृहिणी ने उसे सब बात बतला दी।

वणिक् ने सोचा—'यह गृहचिंतिका है।' उसने घर का सर्वस्व गृहिणी को सौंप दिया।

—निशीथ १२, ४१७४.

५१

चतुर गृहिणी

एक कृपण वणिक् को अपनी पत्नी पर विश्वास नहीं था। वह तंदुल, घृत, गुड़ यहाँ तक कि नमक जैसी वस्तु भी दिनभर के खर्च जितनी ही उसे दिया करता था। सब वस्तुएँ दुकान में ही रखता था, घर पर नहीं।

एक बार गृहिणी को चिन्ता हुई—कदाचित् इनका कोई मित्र या अन्य अतिथि संध्या आदि असमय में आ पहुँचेगा तो उसे क्या खिलाऊँगी ? इस प्रकार का विचार करके उसने अपनी बुद्धिमत्ता से, वणिक् के अनजाने घी, चावल आदि वस्तुओं का थोड़ा-थोड़ा संग्रह प्रारम्भ किया। समय पाकर वह संग्रह बहुत-सा हो गया।

एक बार प्रदोष काल में वणिक् का एक मित्र आ पहुँचा।

लाऊँगा। बकरी के भी बहुत से बच्चे हो जायेंगे, फिर उन्हें बेचकर एक गाय लाऊँगा। गाय के बछड़े होंगे, उन्हें खिला-पिलाकर बैल बनाऊँगा और फिर उन्हें भी बेचूँगा। तब बहुत सा धन कमालूँगा। धन होगा तो कोई सुन्दर कन्या भी मुझसे विवाह करने राजी हो जायेगी। विवाह होगा, पत्नी आयेगी फिर कुछ करने धरने की जरूरत नहीं पड़ेगी। घरवाली मेरी सेवा करेगी, मेरे हुक्म में चलेगी। यदि कभी वह नाज नखरे दिखायेगी, मेरा हुक्म नहीं मानेगी तो डाँट-डपटकर एक लात मारकर उसका अहंकार चूर कर दूँगा।

सोचते-सोचते भिखारी सचमुच तेश में आ गया और घर-वाली को मारने के लिए लात उठाई। लात हंडिया पर लगी, हंडी का सब दूध जमीन पर फैल गया। दूध गिरा तो उसे होश आया। अपने मनसूबों को बिखरते देखकर बिचारा उदास हो गया।

मनुष्य इसी प्रकार सपनों के महल खड़े करता है और जब वे ढहते हैं तो चितातुर हो उठता है।

व्यवहारभाष्य उ० ३, पृ० ८

५२

भिखारी का सपना

एक भिखारी भूख से व्याकुल हुआ नगर में घूम रहा था। वह गौशाला में पहुँच गया। वहाँ बहुत से ग्वाले खड़े थे। भिखारी की दीन-दशा देखकर उन्हें दया आई, भिखारी को पेटभर दूध पिला दिया।

दो चार दिन बाद भिखारी फिर उसी गौशाला में पहुँचा। ग्वालों ने इस वार उसकी हंडिया दूध से भर दी। भिखारी खुशी में नाचता हुआ अपने स्थान पर आया। हंडिया एक कोने में रखकर सो गया।

भिखारी लेटा-लेटा ही विचार करने लगा, "मैं आज दूध पीऊँगा नहीं, बाजार में जाकर इसे बेचूँगा, जो पैसे मिलेंगे उनसे एक मुर्गी खरीदूँगा। मुर्गी अंडे देगी उन्हें बेचकर एक बकरी

से जब वापस उतरने लगा तो नेवले की नजर उस पर पड़ी। क्रोध में आकर वह साँप पर झपटा और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उसका मुँह खून से लथपथ हो गया था। वह उसी हालत में दौड़कर अपनी स्वामिनी के पास आया। स्वामिभक्ति दिखाकर वह मन में खूब प्रसन्न हो रहा था। स्वामिनी के पाँवों में इधर-उधर लिपटने लगा।

सैनिक की स्त्री ने नेवले का रक्त से सना मुँह देखा तो वह हक्की-बक्की रह गई। उसने सोचा—इस दुष्ट ने जरूर मेरे बच्चे को काटा है, उसी के खून से मुँह सना हुआ है, बस, उसने आव देखा न ताव हाथ में जो मूसल था वह सीधा नेवले के सिर पर दे मारा।

वह बिलखती हुई-सी अपने बच्चे को देखने उठी तो देखाकि बच्चा आराम से सोया है और पास में ही काला नाग मरा पड़ा है। अब वह अपने अकृत पर पछताने लगी।

सचमुच जो बिना विचारे अकस्मात् (सहसाकार) कुछ कर डालता है, उसे फिर पछताना पड़ता है।

—बृहत्कल्प भाष्य वृत्ति, पीठिका पृ० ५६

५३

बिना विचारे जो करे...

एक गाँव में कोई सैनिक की स्त्री (चारभड़िया)रहती थी। उसने एक नौली (नेवली) पाली। नेवली निर्भय होकर घर में चारों तरफ घूमती रहती।

एक बार सैनिक की स्त्री और नेवली दोनों ही गर्भवती हुई। दोनों को ही एक साथ प्रसव हुआ। सैनिक की स्त्री नेवली को भी प्यार से दूध और लपसी खिलाती थी, कुछ ही दिनों में उसका बच्चा (नेवला) भी बड़ा हो गया। घर में इधर उधर कूदता-फाँदता और सैनिक की स्त्री के बच्चे के साथ क्रीड़ा करता रहता।

एक दिन सैनिक की स्त्री घर के दरवाजे के पास बैठी अनाज कूट रही थी। बच्चे को भी पास ही में सुला रखा था। उधर से एक सर्प निकला, वह बच्चे की खाट पर चढ़ा, खाट पर

दिया गया। उसके शरीर की दुर्गंध से सारा वन दुर्गंधमय हो गया। राजा श्रेणिक उधर से भगवान को वन्दना करने निकला। सेना उस दुर्गंध को सहन न कर सकी। लोग इधर-उधर जाने लगे। राजा के पूछने पर उन्होंने बतलाया—एक लड़की की दुर्गंध फैली हुयी है।

श्रेणिक ने जाकर उसे देखा और सोचा—पहला प्रश्न इसी के सम्बन्ध में करूँगा।

भगवान ने उसका पूर्वभव कहा। श्रेणिक ने उसका भविष्य पूछा तो भगवान बोले—यह अपने पाप का फल भोग चुकी है। अब तुम्हारी ही पत्नी बनेगी।

श्रेणिक—यह कैसे पता चलेगा ?

भगवान—विवाह के पश्चात् महलों में क्रीड़ा करते समय जो तुम्हारे कंधे पर चढ़ जायतो समझ लेना कि वह यही कन्या है।

श्रेणिक लौट गया। लड़की की दुर्गंध दूर हो गई। एक आभीरी (गुजरी) उसका पालन-पोषण करने लगी। वह यौवनावस्था को प्राप्त हुई।

एक वार वह माता के साथ कौमुदी-उत्सव में गई। अभय और श्रेणिक गुप्त वेष में उस उत्सव को देख रहे थे। अचानक उस लड़की के अंग का श्रेणिक से स्पर्श हो गया और वह उस पर आसक्त हो गया। श्रेणिक ने अपने नाम की मुद्रिका उसके

५४

जुगुप्सा का फल

एक श्रावक ने अपनी लड़की से साधुओं को भिक्षा देने के लिए कहा। विवाह के समय उसने मंडन-प्रसाधन कर रक्खा था भिक्षा देते समय साधुओं के शरीर के मैल की दुर्गंध उसे आई। मन ही मन सोचने लगी—'भगवान् ने अनवद्य (निष्पाप) धर्म का उपदेश किया है। साधु प्रासुक जल से नहा लें तो कौन-सा पाप हो जाय।"

उसने इस स्थान का आलोचन प्रतिक्रमण नहीं किया। मृत्यु के पश्चात् वह देवलोक में जन्मी। वहाँ से चवकर मगध के राजगृह नगर में गणिका पुत्री हुई। गर्भ में ही वह माता को अरति उत्पन्न करने लगी। गणिका ने गर्भपात का प्रयत्न किया मगर गर्भपात हुआ नहीं। अतः जन्मते ही उसको जंगल में छोड़

५५

सच्ची भक्ति किसकी?

किसी पर्वत की तलहटी में झरनों के पास एक शिवमंदिर था। उसमें अनेक स्त्री-पुरुष शिवजी की पूजा करने के लिए आते थे। उनमें दो भक्त मुख्य थे—एक था ब्राह्मण (विप्र) और दूसरा था भील।

ब्राह्मण पूजा के लिए बहुत-सा सामान लाता था, फ़ूल-पत्तियाँ चढ़ाता था, गूगल जलाकर सुवास करता था और चन्दन से उन्हें चर्चित करता। भील गरीब था। उसके पास ये बहुमूल्य वस्तुएं कहाँ से आती। वह हाथियों के मदजल से शिवजी का अभिषेक करता। जंगल के फूल पत्ते चढ़ाकर भक्ति भाव के साथ मूर्ति के सामने नाच करके देवता को प्रसन्न करने की चेष्टा करता।

एक दिन ब्राह्मण जब उपासना करने के लिये मंदिर में

दसीया (ओढ़ने) में बाँध दी और अभय से कहा—मेरी नाम-मुद्रिका गुम हो गई है, खोजो।

अभय ने आदमी भेजे। उन्होंने द्वार रोक लिये। एक-एक आदमी की जाँच होने लगी। आखिर वह लड़की पकड़ी गई। अभय इसका रहस्य समझ गया। वह राजा के समीप जाकर बोला—'चोर पकड़ा गया।'

श्रेणिक—कहाँ है वह ?

अभय—मार दिया।

श्रेणिक का धैर्य टूट गया। तब अभय ने कहा—'नहीं, उसे छोड़ दिया गया है।'

आखिर अभयकुमार की चतुराई से श्रेणिक के साथ उसका विवाह हो गया। एक बार दोनों पासे खेल रहे थे। रानियाँ आपस में हारने वाली पर सवार होती थीं, मगर जब राजा हारता तो ऐसा नहीं किया जाता था। मगर यह रानी उस पर सवार हो गई। राजा को पिछला वृत्तान्त स्मरण आया। स्मरण होते ही राजा के मन में भी कुतूहल जगा। उसने रानी को त्याग दिया। वह दीक्षित हो गई।

साधु संतों से जुगुप्सा-घृणा करने का यह कटु फल है। वास्तव में घृणा जुगुप्सा किसी से भी नहीं करनी चाहिए।

—निशीथ पृ० १७

यथावत् देखकर उसे बड़ा अचरज हुआ। वह सोचने लगा। तभी शिवजी ने कल की घटना सुनाकर कहा—मैंने इसीलिए तो कहा था। वह भील नीच और दरिद्र भले ही है, किन्तु मेरा सच्चा भक्त तू नहीं, वह है। वही सच्ची भक्ति करता है।

—बृहत्कल्प भाष्य वृत्ति पीठिका पृ० २५३

पहुँचा तो उसने देखा—शिवजी भील के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। ब्राह्मण को यह बात फूटी आँखों न सुहाई। उसने शिवजी से पूछा—"भगवन् ! क्या आप मुझसे संतुष्ट हैं ?

शिवजी—क्यों ? तेरे मन में यह प्रश्न क्यों उठा ?

ब्राह्मण—भगवन् ! मैं कुलीन ब्राह्मण हूँ, विविध सुगंधित द्रव्यों से आपकी अर्चा-चर्चा करता हूँ, और इधर यह नीच भील जो स्वयं भी अपवित्र है और अपवित्र वस्तुओं से ही आपकी पूजा करता है। फिर भी आप मुझे छोड़कर उसके साथ वार्तालाप कर रहे हैं ?

शिवजी हंसकर बोले—"तुम ठीक कहते हो ? भील तुम्हारे जैसा कुलीन तो नहीं, किन्तु भक्त है ! जितना प्रेम उसका मुझ पर हैं उतना तुम्हारा नहीं है।"

ब्राह्मण चुप रहा और शिवजी अन्तर्धान हो गये। एक दिन शिवजी ने अपनी एक आँख फोड़ दी। ब्राह्मण पूजा करने आया। शिवजी की एक आँख फूटी देखकर उसे आश्चर्य हुआ, किन्तु फिर भी वह कुछ नहीं बोला, चुपचाप पूजा करके चला गया। थोड़ी देर बाद भील भी आया। उसने जब देखा कि देवता के एक आँख नहीं है, तो उसका हृदय तड़प उठा, झट से उसने अपनी एक आँख निकाल शिवजी के लगा दी।

दूसरे दिन फिर ब्राह्मण अपने समय पर आया। दोनों आँखें

अपनी घोड़ी के विषय में प्रश्न किया—यह घोड़ी गर्भिणी है। इसके क्या जन्मेगा ?

नैमित्तिक ने कहा—'पंचकल्याणी बछेरा जन्मेगा।'

यह सुनकर उसने उसी समय घोड़ी का पेट फड़वाकर देखा। तो वैसा ही बछेरा निकला। फिर कहा—"अगर तुम्हारी बात सच्ची न निकलती तो तुम्हारा पेट भी इसी प्रकार फड़वाया जाता।"

निमित्तकथन से ऐसे अनर्थ होते हैं।

—निशीथ प्र० उ. २६६४-६

५६

भविष्यवाणी

किसी निमित्तवेत्ता ने एक ग्रामस्वामिनी को अपने निमित्त ज्ञान से प्रभावित कर लिया। एक वार उसने नैमित्तक से पूछा—"मेरे स्वामी चिरकाल से वाहर गये हैं, कव लौटेंगे ?"

निमित्तवेत्ता ने उसके आगमन की तिथि और वेला वतला दी। ग्रामस्वामिनी ने यह वात अपने परिवार में सव को कही।

नियत समय पर सव उसकी अगवानी के लिए गये। उसने पूछा—'तुम सवको मेरे आगमन का पता कैसे लग गया ?'

उन्होंने कहा—एक नैमित्तिक क्षपक ने वतलाया।

ग्रामस्वामी ने घर जाकर उस नैमित्तिक को बुलवाया। नैमित्तिक से स्वप्न आदि के विषय में पूछा और उसने सही-सही उत्तर दिया। तव ग्रामस्वामी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसने

किन्तु जलचर-स्थलचर आदि प्राणियों ने विचार किया—'ये विचारे शरट हमारा क्या विगाड़ सकते हैं। यह सोचकर उन्होंने उनकी उपेक्षा कर दी।'

उनमें से एक शरट सुखपूर्वक सोये हाथी के नाक (सूंड़) को बिल समझकर उसमें घुस गया। उसके देखा-देखी दूसरा भी घुस गया। कपाल तक पहुँचकर दोनों परस्पर युद्ध करने लगे।

हाथी आकुल-व्याकुल हो गया। असमाधि और वेदना से पीड़ित व विक्षिप्त-सा होकर उसने सारे वनखंड को तहस-नहस कर डाला। वहाँ रहे हुए अनेक प्राणियों का कचूमर निकाल दिया। फिर जल में घुसा, उसका आलोडन करके जलचर जीवों का भी नाश कर डाला। सरोवर की पाल फोड़ दी। सारा सरोवर नष्ट हो गया और सभी जलचरों का विनाश हो गया।

भावार्थ यह है कि आचार्य, गुरुजन आदि शिष्य के हित के लिए जो बात कहें उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। गुरु आज्ञा की उपेक्षा-अवहेलना से स्वयं को ही कष्ट उठाना पड़ता है।

—निशीथ उ. १०, २७८४-६

५७

उपेक्षा न करो

किसी वन में कमलों से सुशोभित और वन खंड से मंडित एक सरोवर था। वहाँ बहुत से जलचर, थलचर और व्योमचर जीव निवास करते थे। वहीं हाथियों का एक बड़ा झुंड भी रहता था

ग्रीष्म का मौसम था। हाथियों का यूथ जलपान और स्नान करके मध्याह्न के समय वृक्षों की शीतल छाया में मजे में सोया था। समीप ही दो शरट (गिरगिट) घूम रहे थे। वन देवता ने उन्हें देखकर सब की सभा में खतरे की घोषणा करते हुए कहा—"हस्ती, जलचर और दूसरे त्रस-स्थावर जीव मेरी बात सुनें। जहाँ शरट रहते हैं वहाँ कुशल नहीं है। अतएव इनकी उपेक्षा मत करो। इन्हें भगाओ।"

आमन्त्रण की राह देखता हुआ वह ब्राह्मण दरिद्र ही बना रहा। इसी प्रकार साधु (शिष्य) भी वैयावृत्य के लिए किसी की अभ्यर्थना की राह देखते रहे तो अपनी निर्जरा आदि की दृष्टि से वंचित ही रह जाओगे। सेवा किसी की राह नहीं देखती, जो करता है, उसी को फल देती है।

५८

सेवा के लिए

एक राजा कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन ब्राह्मणों को दान दिया करता था। चौदह विद्याओं के पारगामी एक ब्राह्मण को उसकी भोजिआ (नामक) ब्राह्मणी ने कहा—तुम सब ब्राह्मणों के अधिपति हो, राजा के पास जाओ वह तुम्हें उत्तम दान देगा।

ब्राह्मण बोला—प्रथम तो मैं राजा का किल्विष लूं, दूसरे बिना आमंत्रण जाऊँ! अगर राजा अपने बाप, दादा पर अनुग्रह करना चाहता है तो यहाँ आकर मुझे ले जाय या यहीं रहते मुझे दान दे!

भोजिआ ने कहा—राजा के पास तुम्हारे जैसे अनुग्रह करने वाले बहुत-से ब्राह्मण हैं। अगर राजा से धन लेना चाहते हो तो तुम्हीं जाओ।

वंशानां वृत्तिः शीघ्रं कार्या।' इसका सीधा-साधा अर्थ है 'आमों को काटकर बांसों की वाड़ शीघ्र करो।'

ग्रामीण लेख का गुप्त अर्थ नहीं समझ सके। उन्होंने वांस काट कर आमों की वाड़ कर दी।

चाणक्य ने अपनी आज्ञा के अमल के विषय में तलाश करवाई। जव उसे ग्रामीणों के बाँस काटने का हाल मालूम हुआ तो उसने क्रुद्ध होकर उपालम्भ दिया—"अरे तुमने यह क्या किया? मैंने आज्ञा कुछ और दी, किया कुछ और ही! आज्ञाभंग करने का महान अपराध किया है तुमने?

तत्पश्चात् वालकों से लगाकर वृद्धों तक—समस्त ग्रामवासी पुरुषों की वाड़ करके उस गाँव को जला दिया। किसी का कहना है—वाड़ में वालक—वृद्धों को पटककर जला दिया। इस प्रकार आज्ञा भंग का भय प्रजा पर जमाया।

—निशीथ १३-५१३८

□□

५६

आज्ञाभंग का दुष्परिणाम

कतिपय क्षत्रिय समझते थे कि चन्द्रगुप्त मौर्य अर्थात् मयूर-पोषक (वंश का) है। ऐसा समझकर वे उसकी आज्ञा का अनादर करते थे।

महामन्त्री चाणक्य को विचार आया—जिसकी आज्ञा का आदर न हो, वह राजा कैसा ? किस प्रकार आज्ञा को तीक्ष्ण बनाई जाय ?

चाणक्य भिक्षुक वेष में घूमने लगा। घूमते हुए एक ग्राम में गया, जहाँ उसे भोजन नहीं मिला। उस ग्राम में बहुत से आम और बाँस के वृक्ष थे।

उस गाँव पर रुष्ट होकर चाणक्य ने आज्ञा की प्रतिष्ठा कायम करने के लिए एक लेख (पत्र) भेजा—'आम्रान् छित्त्वा

पं. मुनिश्री कन्हैयालाल जी 'कमल'
द्वारा सम्पादित ग्रन्थ

—※—
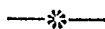
१: गणितानुयोग	२५-००
२. जैनागमनिर्देशिका	२५-००
३. समवायाङ्ग (सानुवाद सपरिशिष्ट)	५-००
४. चरणानुयोग	प्रेस में
५. स्थानाङ्ग (सानुवाद सपरिशिष्ट)	प्रेस में

प्राप्तिस्थान :

आगम अनुयोग प्रकाशन
बांकलीवास, सांडेराव
जिला–पाली (राजस्थान)

शा० हिम्मतमल हस्तीमल
ए|४ मस्कती मार्केट
अहमदाबाद-२